अमृत-ज्योति

१०८ श्रीमद् अमृतचन्द्र सूरि रचित

आत्म-ख्याति

के

पूर्वरंग का हिन्दी अनुवाद

प्रकाशक

लालचन्द्र जैन, एडवोकेट

रोहतक

अमृत-ज्योति

१०८ श्रीमद् अमृतचन्द्र सूरि रचित

आत्म-ख्याति

पूर्वरंग का हिन्दी अनुवाद

प्रकाशक

लालचन्द्र जैन, एडवोकेट

रोहतक

प्रकाशक
लालचन्द्र जैन, एडवोकेट
रोहतक
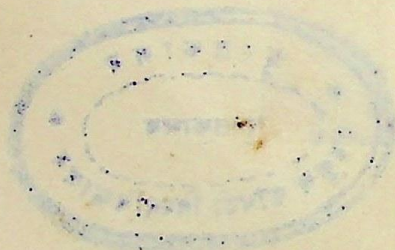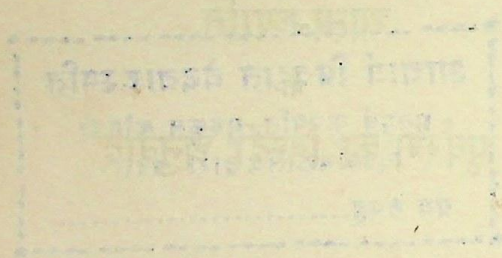
मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली

अमृत-ज्योति

नय नय लहिय वार शुभ सार ।
पय पय गहिय मार दुखकार ।।
लय लय गहिय पार भवधार ।
जय जय समयसार अविकार ।।
समय सार जिन राज हैं ।
स्याद्वाद जिन बैन ।।
मुद्रा जिन निर्ग्रंथता ।
नमूं करें सुख चैन ।।

Extracts from the note book of the Late Rai Bahadur Jagmander Lal Jaini M.A. (Oxon), M.R.A.S., Barrister-at-Law President Legislative Council, Indore.

———

"The music honey of Kund Kunda's Vision of Reality sinks soft and subtle into my pure soul, and mixing with it, awakens it to the sweet sound of its own self, filling it with a joy that is deeper than the deepest oceans."

* * *

"The joy of life, the beautitude of Being, of the pure unalloyed feeling of mere being, of being oneself, remains. It is delicious, all prevading all-conquering. It is the self-absorption of the Real standpoint of Kund Kunda blessed be his púre name. Up till now, next to Lord Baba, his is to my mind the purest personality, the truest teaching, yet known to me."

Extracts from "An introduction to Jain Philosophy" by the late Rai Bahadur Jagmandar Lal Jaini M.A. (Oxon), M.R.A.S., Bar-at-Law., President Legislative Council Indore.

"Samayasara is full of the one idea of one concentrated divine unity. This is the only one Idea which counts. All Truth, Goodness, Beauty, Reality, Morality, Freedom is in this. The self and it alone is true, good, lovely, real, moral. The non-self is error, myth, mithyatva, ugly, deluding, detractor from and obscurer of reality, immoral, worthy of shunning and renunciation, as bondage and as anti-Liberation. This Almighty, all-Comprehensive, claim of Self-Absorption must be perfectly and completely grasped for any measure of success in understanding Shri Kunda Kunda Acharya's works, indeed for the true understanding of Jainism. Sva-Samaya or Self-Absorption is the

key-note, the purpose, the lesson, the object, the goal and the centre of Shri Kunda Kunda's all works and teachings. The Pure, All-Conscious, Self-absorbed soul is God and never less or more. Any connection Causal or Effectual with the non-self is a delusion, limitaion, Imperfection, bondage."

"It may well and legitimately be asked; what is the practical use of this Jaina idea of self-Absorption ?"

"The answer is : The mere insight into and knowledge of this Real Reality, is of every-day use in the conduct of our individual and collective lives. It is a true and the only panacea for all our ills. Its rigour may be hard. Its preliminary demand may occasion a wrench from our cherished habits, customs, and fashions of thought and action. But its result which is immediate, instantaneous and unmistakable, justifies the hardship and the

demand. The relief and service, the sure uplift of ourselves, the showering of calm balm, by the practice of self-realization upon the sore souls of our brethren and sisters, justify the price paid."

"Once you sit on the rock of Self-realization, the whole world goes round and round you like a crazy rushing something, which has lost its hold upon you and is mad to get you again in its grip, but cannot. The All-conquering smile of the Victor (Jina) is on your lips. The vanquished, deluding world lies dead and important at your feet."

अमर-ज्योति

श्रीमद् कुंद कुंदाचार्य आजसे २००० वर्ष पूर्व एक महान् आचार्य हो चुके हैं। उनकी प्राकृत रचना "समय पाहुड़" आध्यात्मिक साहित्य में एक अद्वितीय कृति है इस कृति का आधार श्रुत केवलि की देशना है। उस देशना में ज्ञान प्रवाद पूर्व के बारह वस्तु अधिकारों के अन्तर्गत दश वस्तु अधिकार हैं उसकी बीस प्ररूपणा (अन्तर अधिकारों) में समय पाहुड़ एक अन्तर अधिकार है। उस ही के आधार पर श्री कुँद कुंदाचार्य ने परम निष्पक्षता से इस ग्रन्थ की रचना की है। ये ग्रन्थ जैन मत के विभिन्न संप्रदायों में एकसी श्रद्धा और भक्ति के साथ स्वाध्याय में आता है और प्राणिमात्र का कल्याण करने में समर्थ हैं।

इसकी टीका श्री कुँद कुंदाचार्य के शिष्य श्रीमद् अमृत चन्द्र सूरि ने एक हजार वर्ष हुए आत्म-ख्याति नाम से की है। जिस प्रकार समय सार एक अद्वितीय ग्रन्थ है उस ही प्रकार आत्मख्याति एक बेजोड़ टीका है। इसमें समय पाहुड़ के भावों को बहुत स्पष्ट और विकसित किया है, जिससे मुमुक्षु के लिए समय पाहुड़ की रहस्यमय भाषा और भावों को समझना सुगम हो गया है।

इस संस्कृत आत्म-ख्याति ग्रन्थ का अनुवाद पं० जयचन्द्र जी छावड़ा जयपुर निवासी ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से किया है। उनकी भाषा भावपूर्ण और ललित है। उसके पढ़ने में मूलग्रन्थ का आनन्द आता है। इस अमृत ज्योति का आधार भी आत्म ख्याति और उसका अनुवाद है। यह छोटा होते हुए भी संक्षेप बुद्धि मुमुक्षु के लिए पूरे ग्रन्थ के स्वाध्याय का आनंद प्रदान करेगा और उसके लिए उस महान् ग्रन्थों की कुँजी का काम देगा, इस भावना से ही यह प्रकाशित किया जा रहा है।

आत्मख्याति टीका को आचार्य श्री ने एक नाटक का रूप दिया है। नाटक में शृङ्गार आदि रसों की प्रचुरता होती है, आत्मख्याति में नवरस प्रचुरता से भरे हुये हैं, विशेष इतना है कि सांसारिक नाटकों में ये रस जड़त्व को लिए हुए होते हैं और इस टीका में ये रस आध्यात्मिक हैं तथा आत्मा के विकास करने में समर्थ हैं, इन रसों के द्वारा ही आत्मा की पूर्णता विकास में लाई गई है, हर वस्तु का अनुभव उसके रस द्वारा ही होता है।

इस नाटक का चरित नायक पर समय वा स्वसमय न हो कर "समय" है और उसका अनुभव ही इस ग्रन्थ का ध्येय है, यह अनुभव बिना पूर्ण रूप के नहीं हो सकता है।

वस्तु की सत्ता सामान्य और विशेष को लिये हुये है, समय भी एक वस्तु है, इसलिये वह भी इस नियम का उल्लं-घन न करती हुई सामान्य विशेषात्मक है। "स्व और पर" उसके अपने विशेष नहीं हैं, ये विशेष समय में पर निमित्त से

होते हैं, इसलिए इन्हें निश्चयदृष्टि से उसके अपने विशेष नहीं कहे जा सकते। समय के अनिमित्तक सामान्य और विशेष का देखना ही उसका यथार्थ अनुभव करना है।

समय की इस प्रकार वस्तु स्थिति होने के कारण व्यवहारिक भाषा से साधारणतया यथार्थ और पूर्ण स्वरूप का ज्ञान करना और उसका अनुभव करना असंभव है। व्यवहारिक भाषा वस्तु के विशेषों का वर्णन तो करती है पर वे विशेष निमित्तक अभूतार्थ होते हैं। निमित्तक व अनिमित्तक विशेष भावों से वस्तु का भेद करने के लिए भाषा का प्रयोग विलक्षण प्रकार से करना पड़ता है, इस कारण स्याद्वाद ही वह कला है—जिससे व्यवहारिक भाषा भी वस्तु के यथार्थ ज्ञान कराने में समर्थ होती है। स्याद्वाद में दो नय प्रधान हैं एक शुद्धनय और दूसरा अशुद्धनय। दोनों का विषय यथार्थ में एक ही है। शुद्धनय का विषय तो वह वस्तु है जो निमित्तक विशेषों से रहित है, तथा व्यवहारिक भाषा में सामान्य कही जाती है। निश्चयनय का विषय वस्तु का वह स्वरूप विकसित करना है जो निमित्तक और अनिमित्तक विशेषों से रहित सामान्य है और व्यवहारनय का विषय निमित्तक विशेषों से भिन्न करके वस्तु को सामान्य विशेषात्मक स्थापन करना है। ऐसा ही व्यवहार निश्चय नय के विषय और वस्तु का प्रतिपादक और साधक है जो व्यवहार वस्तु के मात्र निमित्तक विशेषों को कहने वाला है वह व्यवहार मात्र ही है।

समय का लक्षण ज्ञायक है उपयोग नहीं निश्चयनय से

उपयोग एक निमित्तक भाव है पर ज्ञायक अनिमित्तक है। ज्ञायक में अन्य आकार को ग्रहण करने से या अन्य रूप को प्रकाशित करने से भी उस लक्षण में अव्याप्ति अतिव्याप्ति आदि का दोष नहीं आता है।

उपयोग लक्षण में पर निमित्तक शुद्धि और अशुद्धि आ जाती है पर ज्ञायक में नहीं। इसी कारण समय के ज्ञान दर्शन और अनुभव में ज्ञायक लक्षण परम उपयोगी है, इस ज्ञायक लक्षण की प्रवृत्ति अनेक आकारों में होती हुई भी अपने आपको भिन्न प्रकाशरूप रखने में समर्थ है और अनेक भावों के ज्ञायक में प्रवेश करने से भी ज्ञायक, ज्ञायक ज्योति ही रहता है आवरणित नहीं होता।

ज्ञायक पुण्य पाप आस्रव संवर निर्जरा बंध में प्रवृत्त होता है, इन सब तत्वों के आकार ज्ञायक में प्रकाश रूप रहते हैं, ज्ञायक इन सब रूपों को प्रकाशित करता है ऐसा होते हुये भी ज्ञायक अपने आप जगमगाता हुआ जाज्वल्यमान है इसे कोई आवरणित नहीं कर सकता न कोई इसे बिगाड़ सकता है। वह ज्ञायक भाव दर्शन ज्ञान चारित्र में निरन्तर प्रकाशमान है, इस लिये मुमुक्ष को दर्शन ज्ञान-चारित्र के द्वारा ज्ञायक भाव का अभ्यास करना आवश्यक है। मुमुक्षु को निश्चयनय का उपदेश करने वाले व्यवहार ही द्वारा उपदिष्ट ज्ञान दर्शन से ज्ञायक का अभ्यास करना है।

पुण्य, पाप साँसारिक सुख-दुख का जो अनुभव है, उसमें जो अनुभवन क्रिया है वह भिन्न है, और एक है, तथा जिन

भावों का अनुभवन किया जाता है वे भिन्न है, अनेक हैं। अनुभवन क्रिया मात्र के द्वारा अनुभव करते हुए ज्ञायक को अनुभवनीय भावों से भिन्न करना है, इस भिन्न अनुभवन क्रिया में कोई अन्य अनुभवनीय भाव का प्रवेश नहीं हो सकता। अनुभव कर्त्ता स्वयं स्वतन्त्र होकर अपनी क्रिया करने में समर्थ है। इसीलिये इस अनुभवकर्ता और अनुभवन क्रिया से अनुभवनीय भावों को भिन्न जानना और देखना परम कर्त्तव्य है।

जिस समय यह अनुभवकर्ता अपने ज्ञायक अनुभवनीय भाव में स्थित होता है, और अनुभव क्रिया तथा अनुभव में एकत्व उत्पन्न करता है तब तत्काल अन्य अनुभवनीय भावों से सहज छूट जाता है। समय के स्वतन्त्र रूप से सामान्य और विशेष होने का ही यह फल है और इस प्रकार समय पूर्ण स्वतन्त्र और निराकुल ज्ञान पुंज रूप से व्यवस्थित हो जाता है। सो ज्ञान-ज्योति रूप है, कैसा है ज्ञान जो अज्ञान (ज्ञान से अन्य भाव) का नाश नहीं करता है वरन् अज्ञान को अज्ञान रूप दिखाता है और न ही अज्ञान (ज्ञान से अन्य भाव) इस ज्ञान को अज्ञान रूप कर सकते हैं। ऐसे इस ज्ञान की विलक्षता अमृत ज्योति प्रकाश करती है, जो आनन्दमयी ज्ञान धन रूप सदा प्रकाश मान रहे।

रोहतक
अक्टूबर, १९६१

नानकचन्द जैन
एडवोकेट

अमृत-ज्योति

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावायभावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ।।

समय जो सब पदार्थों में सार और उत्कृष्ट है, ताके अर्थि मेरा नमस्कार हो । कैसा है समयसार ? "स्वानुभूत्या चकासते" कहिये अपनी ही अनुभवरूप क्रिया ताकरि प्रकाश करता है, आप कूं आपही करि जाने है प्रगट अनुभव करे है । बहुरि कैसा है ? "भावाय" कहिये समभारूप वस्तु है । बहुरि कैसा है ? "चित्स्वभावाय" कहिये चेतनागुणरूप है स्वभाव जाका । बहुरि कैसा है ? "सर्व भावान्तरच्छिदे कहिये सर्व अपने से अन्य भावों को भी जानने वाला है ।

प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप ।
सब ज्ञाता लखिकै नमौं, समयसार सबभूप ।।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः ।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥

"एकान्त नहीं है जामे" ऐसा जो ज्ञान तथा वचन तिस-मयी मूर्ति है सो नित्य कहिये सदा ही प्रकाशतां कहिये प्रकाश-रूप होऊ । कैसी है ? अनंत हैं धर्म जामैं ऐसा अर प्रत्यक् कहिये परद्रव्यनितैं तथा परद्रव्यके गुणपर्यायनितैं भिन्न अर परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपने विकारनितैं कथंचित् भिन्न एकाकार जो आत्मा ताका तत्त्व कहिये, असाधारण सजातीय विजातीय द्रव्यनितै विलक्षण निजस्वरूप, ताही पश्यंती कहिये अवलोकन करती है ।

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ।

समयसार कहिये शुद्धात्मा तथा यह ग्रंथ, ताकी व्याख्या कहिये कथनी तथा टीका, ताहीकरि मेरी अनुभूति कहिये, अनुभवनक्रियारूप परिणति, ताकै परमविशुद्धि होऊ। कैसी है यह मेरी परिणति ? परपरिणतिकूं कारण जो मोहनामा कर्म, ताको अनुभवन से और अनुभाव्य कहिये रागादिक परिणाम की व्याप्ति करि निरंतर कल्माषित कहिये मैली है। बहुरि मैं कैसा हूँ ? शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूं।

वंदित्तु सव्वसिद्धे,
धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड,
मिणमो सुयकेवलीभणियम् ।।

मैं सर्व सिद्धनिकूं वंदिकरि, यह समयसार नाम प्राभृत है ताही कहूँगा। कैसैं हैं सिद्ध ? ध्रुव अर अचल अर अनौपम्य, इनि तीन विशेषणकरि युक्त गतीकूं प्राप्त भये हैं। बहुरि कैसा है यह समयप्राभृत ? श्रुतकेवलीनिकरि कह्या है।

प्रथमत एव कहिए ग्रंथ की आदिहीकिषैं सिद्ध भगवान हैं, तिनि सर्वहीकूं. भावद्रव्यस्तवन करि अपने आत्माविषैं अर परके आत्माविषैं स्थापि करि, इस समय नाम प्राभृतका भाववचन अर द्रव्यवचनकरि परिभाषण अरंभिये है, कैसे हैं सिद्ध भगवान् सिद्धनामतैं साध्य जो आत्मा, याकै प्रतिच्छंदके स्थान हैं, जिनका स्वरूप संसारी भव्य जीव चिंतवन करि, तिनिसमान अपना स्वरूपकूं ध्याय तिनिसारिखे होय हैं। बहुरि चारों गतितैं विलक्षण जो पंचमगति ताही पाइये हैं। कैसी है

पंचमगति ? स्वभावतैं उपजी है, तातैं ध्रुवपणाकूं अवलंबे है, बहुरि कैसी है ? अनादितैं अन्यभाव जे पर, तिनिके निमत्तितैं भई है परविषैं परिवृत्ति कहिये भ्रमण, ताकी विश्रांति कहिये अभाव ताका वशकरि अचलपणाकूं प्राप्त भई बहुरि कैसी है ? समस्त जे जगत में उपमान पदार्थ तिनितैं विलक्षण अद्भुत माहात्म्यकरि नाहीं विद्यमान है काहूकी उपमा जाकै ऐसी है। ऐसी अपवर्गगति सिद्ध भगवान् प्राप्त भए हैं।

बहुरि कैसा है यह समयप्राभृत ? अनादिनिधन जो श्रुत कहिए परमागम शब्दब्रह्म, ताकरि प्रकाशितपणाकरि, बहुरि समस्तपदार्थनिका सार्थ कहिए समूह, ताके साक्षात्करणहारे जे केवली भगवान् सर्वज्ञ, तिनिकरि प्रणीतपणाकरि, तथा श्रुतके-वलि आप अनुभव करते तिनिकरिभाषितपणाकरि प्रमाण-ताकूं प्राप्त भया है, बहुरि समय जो सर्वपदार्थ तथा जीव नामा पदार्थ ताका प्रकाशक है। अरहंत भगवानका प्रवचन जो परमागम ताका अवयव है अंश है। ऐसा समयप्राभृतका मैं अपना अर परका अनादिकालतैं भया जो मोह अज्ञान मिथ्यात्व ताका नाश होने के अर्थि परिभाषण करूंगा।

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिद तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥

जो निश्चयकरि जीव है, सो दर्शनज्ञानचारित्रविषैं तिष्ठया होय ताहि तू स्वसमय जान। बहुरि पुद्गल कर्मके प्रदेशनिविषैं तिष्ठया होय ताहि परसमय जान।

जो यहु जीवनामा पदार्थ है सो ही समय है। जातैं समय-शब्दका ऐसा अर्थ है, जो—सम् ऐसा तो उपसर्ग है, बहुरि अय गतौ धातु है ताका गमन अर्थ भी है अर ज्ञान अर्थ भी है, उपसर्गका एकपणा अर्थ है, तातैं एककाल जानना अर परिणमना दोऊ क्रिया होय सो समय, सो ही जीव नामा पदार्थ है। एकैकाल परिणमै भी है अर जानै भी है, ऐसै दोऊ क्रिया एककाल जाननी। सो कैसा है? नित्य ही परिणामस्वभावविषैं तिष्ठनेतैं उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकतारूप जो अनुभूति सो है लक्षण जाका ऐसी जो सत्ता, ताकरि अनुस्यूत है—सहित है। बहुरि कैसा है? चैतन्यस्वरूपपणातैं नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञान ज्योति: स्वरूप है, बहुरि कैसा है? अनंत धर्मनिविषैं अधिरूढ़ तिष्ठ्या जो एकधर्मीपणा तातैं प्रगट भया है द्रव्यपणा जाका।

बहुरि कैसा है ? क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तें जे अनेक-भाव तिस स्वभावपणातैं अंगीकार करे हैं गुणपर्याय जाने।

बहुरि कैसा है ? अपना अर अन्यद्रव्यनिका आकारके प्रकाशनेविषैं समर्थपणातैं पाया है, समस्तरूप जामैं झलकै ऐसा एकरूप ज्ञानका आकार जानै। बहुरि कैसा है ? न्यारे न्यारे द्रव्यनिके गुण जे अवगाहनगतिस्थिति वर्तना हेतुपणा तथा रूपीपणा तिनके अभावतैं, अर असाधारणचैतन्यरूपपणा-स्वभावके सद्भावतैं, अन्यद्रव्य, जे आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुग्दल इनितैं भिन्न है। बहुरि कैसा है ? अनंत अन्य द्रव्यनितैं अत्यन्त संकर कहिये एकक्षेत्रावगाहरूप होतैं भी अपने स्वरूपतैं न छूटनेतैं टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। ऐसा जीव नामा पदार्थ समय है।

सो यह समय जिस काल सकलपदार्थनिके स्वभाव भासनेविषैं समर्थ ऐसी विद्या जो केवलज्ञान ताका उपजावन-हारा जो भेदज्ञानज्योति ताका उदय होनेतैं समस्त परद्रव्यनितैं छूटिकरि दर्शनज्ञानविषैं निश्चितप्रवृत्तिरूप जो आत्मतत्त्व तिसतैं एकपणारूप लीन होय प्रवर्ते, तिसकाल दर्शनज्ञान-

चरित्रविषैं तिष्ठनेतैं अपने स्वरूपकूँ एकतारूप करि एककाल जानता तथा परिणमता संता स्वसमय कहावैं है। बहुरि जिस काल अनादि अविद्यारूप कंदली हैं मूल जाका ऐसा कंद ज्यौं पुष्ट भया जो मोह, ताके उदय के अनुसार प्रवृत्तिके आधीनपणाकरि दर्शनज्ञान स्वभावविषैं निश्चितवृत्तिरूप जो आत्मतत्त्व, तातैं छूटिकरि अर परद्रव्य है निमित्त जाकूँ ऐसा जो मोहरागद्वेषादिभाव तिनिविषैं एकतारूप लीन होय प्रवर्तें, तिस काल पुद्गलकर्म के प्रदेशनिविषैं तिष्ठनेतैं, परद्रव्यकूँ आपतैं एकपणा करि एककाल जाणता तथा रागादिरूप परिणमता संता, परसमय ऐसा प्रतीतिरूप कीजिये है। ऐसैं इस जीव नामा पदार्थ के स्यसमय परसमय ऐसा दोय प्रकार-पणा प्रगट होय है!

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहाएयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥

समय है सो एकत्वनिश्चयविषै प्राप्त है, सो सर्वलोकविषैं सुन्दर है, तिस कारणकरि एकत्वविषैं अन्यके बंधकी कथा है सो विसंवादिनी कहिये निंदा करावनहारी है।

इहां समयशब्दकरि सामान्यकरि सर्व ही पदार्थ कहिये। जातैं समयशब्द की ऐसी निरुक्ति है—जो 'समयते' कहिये एकीभावकरि अपने गुणपर्यायनिकूँ प्राप्त होय परिणमें सो समय हैं। तातैं सर्व ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्यस्वरूप लोकविषैं जे जितने कोई पदार्थ हैं, ते सर्व ही अपने द्रव्यविषैं अंतर्मग्न जे अपने अनन्तधर्म, तिनिके समूहकूं चूंवते स्पर्शते हैं, तोऊ परस्पर अन्यकूं अन्य नाहीं स्पर्शते हैं। वहुरि अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप तिष्ठे हैं, तोऊ सदाकाल निश्चयतैं अपने स्वरूपतैं नाहीं चिगते हैं यातैं पररूप नाहीं परिणमनेतें अविनष्ट जे अपनी व्यक्ति तिनिकरि जैसी टाकीकी ऊपरी मूर्ति होय तैसे शाश्वत तिष्ठते हैं! याहीतैं

विरुद्धकार्य जे स्वभावतैं विपरीतकार्य अर अविरुद्ध जे स्वभावरूपकार्य, तिनिका हेतुपणाकरि निरंतर समस्तनैं परस्पर उपकार करे हैं, परंतु निश्चयकरि एकत्वनिश्चय-पणाकूं प्राप्त भये ही सुन्दरपणाकूँ पावें हैं। जो अन्य प्रकार होय, तौ संकरव्यतिकरादि दोष हैं ते सर्व ही आय पडें। ऐसैं सर्वपदार्थनिकै भिन्न भिन्न एकपणा ठहरता संता जीव नामा जो समय, ताकै बंध की कथातैं विसंवादकी आपत्ति होय है। काहेतैं ? जातैं बंधकथाका मूल जो पुद्गलकर्मके प्रदेशनिमैं तिष्ठना सोही है मूल जाका, ऐसा जो परसमयपणा, ताकरि उपजाया जीवकै परसमय स्वसमयरूप द्विविधिपणा आया है। यातैं समयकै एकपणा ही ठहरे है, यह ही सराहने योग्य है।

सुदपरिचणाटुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विभत्तस्स ।।

सर्व ही लौककै कामभोगसन्बन्धी बंधकी कथा तो सुननेमैं आई है, परिचयमैं आई है, अनुभवमैं आई है, यातैं सुलभ है । बहुरि यह भिन्न आत्माका एकपणा कबहू श्रवणमैं न आया, तथा परिचयमैं न आया, तथा अनुभवमैं न आया, यातैं केवल एक यहही सुलभ नाहीं है ।

इस समस्त ही जीवलोककैं कामभोगसंबंधी कथा है सो एकपणा के विरुद्धपणातैं अत्यन्त विसंवाद करावनहारी है, तौऊ अनन्तबार पहलैं सुननेमैं आई है बहुरि अनंतवार पहलैं परिचयमैं आई है, बहुरि अनंतवार पहलैं अनुभवमैं आई है । कैसा है जीवलोक ? संसार सो ही भया चक्र, ताका क्रोड कहिए मध्य, ताविषैं आरोपण किया है स्थाप्या है । बहुरि कैसा है ? निरंतर अनंतवार द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप परावर्त जो पलटना तिनिकरि प्राप्त भया है भ्रमण जाकै । बहुरि कैसा है ? समस्तलोककूं एकछत्रराज्यकरि वशी किया तिसपणाकरि महान्

वडा जो मोहरूप पिशाच ताकरि वलधकी ज्यौं वाह्या है। बहुरि बलात्कारकरि उठी जो तृष्णा सो ही भया रोग, ताके दाहपणाकरि प्रगट भई है अंतरंगविषैं पीडा जाकै। बहुरी मृगकी ज्यौं तृष्णाकरि जैसैं भाडलपरी दौडे, तैसैं उछलि उछलि अर इंद्रियनिकरि दाह विषयके ठिकाणेकूं अपणे करे है। बहुरि कैसा है ? परस्पर आचार्यपणाकूँ आचरता है कहिकरि अंगीकार करावे है। यातैं कामभोगसंबंधी कथा तौ सर्वकै सुलभ है। बहुरि यह भिन्न आत्माका एकपणा है सो सदा प्रगटपणाहै सो सदा प्रगटपणाकरि अंतरंगविषैं प्रकाशमान है, तौऊ कषायके समूहकरि एकरूपसा होय रह्या है, तातैं अत्यन्ततिरोभाव होय रह्या है, आच्छादित है, सो आपकै तौ अनात्मज्ञपणाकरि कदे आपकूं आप जान्या नाहीं, अर पर जे आत्मा के जानने वाले तिनिकै सेवन विना न तौ कदे सुननेमैं आया, न कदाचित् परिचयमैं आया, न कदाचित् अनुभवमैं आया। कैसा है यह ? निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाशकरि प्रगट देखनेमैं आवै है, तौऊ पूर्वोक्तकारणनिकरि इस भिन्न आत्माका एकपणा पावना सुलभ नाहीं है।

तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घित्तव्वं ॥

समय जो एकत्वविभक्त है, ताहि मैं अपने आत्माके विभवकरि दिखाऊँ हूं। जो मैं दिखाऊँ तौ प्रमाण करना । अर जो कहूँ चूकूं, तो छल नाहीं ग्रहण करना ।

जो कछू मेरा आत्माका निजविभव है, तिस समस्तकरि यह मैं एकत्वविभक्त आत्मा है ताही दिखाऊँ हूँ, ऐसा उद्यम बांध्या है । कैसा है मेरा आत्माका निजविभव ? इस लोकविषैं प्रगट समस्तवस्तुका प्रकाश करनहारा अर स्यात्पदकरि चिन्हित जो शब्दब्रह्म कहिये अरहंतका परमागम ताका उपासनाकरि है जन्म जाका । बहुरि कैसा है ? समस्त जे विपक्ष कहिये, सर्वथैकांतरूप नयपक्ष, तिनिका क्षोद कहिये निराकरण तिसविषैं समर्थ जो अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति ताका अवलंबनकरि है जन्म जाका । बहुरि कैसा है ? निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा ताविषैं अंतर्निमग्न जे परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरादिकतैं लगाय हमारे गुरुपर्यंत, तिनिकरि प्रसादरूप कीया

दीया जो शुद्धात्मतत्त्वका अनुशासन अनुग्रहकरि उपदेश, तथा पूर्वाचार्यनिके अनुसार उपदेश ताकरि है जन्म जाका। बहुरि कैसा है ? निरंतर झरता आस्वादमैं आवता अर सुन्दर जो आनंद ताकरि मिल्या हुवा जो प्रचुरसंवेदनास्वरूप जो स्वसंवेदन, ताकरि है जन्म जाका। ऐसा जो ज्यौं मेरा ज्ञानका विभव है, ता समस्तकरि दिखाऊँ हूँ। सो जो यह दिखाऊँ तौ स्वयमेव अपने अनुभवप्रत्यक्षकरि परीक्षा करि प्रमाण करना। बहुरि जो कहूँ चूक जाऊँ, तौ छलग्रहणविषैं सावधान न होना।

ण्वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव ॥

जो ज्ञायकभाव है, सो अप्रमत्त नाहीं है बहुरि प्रमत्त भी नाहीं है इन दोनों का ज्ञाता है। ऐसैं याकूं शुद्ध कहे हैं। बहुरि जो ज्ञायकभावकरि जाण्या, सो, सो ही है। अन्य दूसरा कोई नाहीं है।

जो ज्ञायक एक भाव है, सो आपहीतैं सिद्ध है, काहूकरि भया नाहीं है। तिसभावकरि तौ अनादिसत्तारूप है। बहुरि कबहू याका विनाश नाहीं है, तातैं अनंत हैं। नित्य उद्योतरूप है, तातैं क्षणिक नाहीं है। ऐसा स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। सो संसारकी अवस्था में अनादिबंधपर्यायकी निरूपणाकरि कर्मरूप पुगद्लद्रव्यकरि सहित क्षीरनीरकीज्यौं एकपणा होतै भी द्रव्यका स्वभावकी निरूपणाकरि देखिये, तब कठिन है मिटना जाका ऐसा जो कषायसमूहका उदय, ताका विचित्र-पणाकरि प्रवर्तें जे पुण्यपापके उपजावनहारे समस्त अनेकरूप

शुभाशुभभाव, तिनिके स्वभावकरि नाहीं परिणमे है। यातैं प्रमत्त भी नाहीं है, अर अप्रमत्त भी नाहीं है। यह ही समस्त अन्यद्रव्यनिके भावनिकरि भिन्नपणाकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिये है। जातैं ज्ञेयाकार अवस्थाविषैं भी जो ज्ञायकभावकरि जाण्या जो अपना ज्ञायकपणा, सो ही स्वरूप प्रकाशनेकी जाननेकी अवस्थामैं भी ज्ञायक ही है, जातैं अभेदविवक्षातैं कर्ता तो आप ज्ञायक, अर कर्म, आपकूं जाण्या, सो ए दोऊ एक आपही है, अन्य नाहीं है। जैसैं दीपक घटपटादिककूं प्रकाशे है, तिनिकै प्रकाशनेकी अवस्थामैं भी दीपक ही है, सो ही अपनी ज्योति प्रकाशनेकी अवस्थामैं भी दीपक ही है, किछू अन्य नाहीं, तैसैं जानना।

ववहारेणुवदिस्सदि, णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥

ज्ञानीकै भाव चारित्र, दर्शन, ज्ञान हैं, ते व्यवहारकरि उपदेशिये हैं। निश्चयकरि ज्ञान भी नाहीं है, चारित्र भी नाहीं है, दर्शन भी नाहीं है। ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है, याहीतैं शुद्ध कहिये।

इस ज्ञायक आत्माकै बंधपर्यायके निमित्ततैं अशुद्धपणा है, सो तौ दूरि ही तिष्ठौ, याकै दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते भी विद्यमान नाहीं हैं। जातैं निश्चयकरि अनंतधर्मा जौ एकधर्मी वस्तु, ताकूं जानैं न जाण्या, ऐसा जो निकटवर्ती शिष्यजन, ताकूं तिस अनंतधर्मस्वरूप धर्मी का जनावनहारे जे केई धर्म, तिनिकरि तिस शिष्यजनकूं उपदेश करते जे आचार्य, तिनिका धर्मनिके अर धर्मी के स्वभावथकी अभेद है। तौऊ नामथकी भेद उपजाय करि व्यवहारमात्रही करि, ज्ञानीकै दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, है ऐसा उपदेश है। बहुरि परमार्थतैं देखिये

तब एक द्रव्यनैं पीये जे अनंतपर्याय तिसपणाकरि किंचित् एक मिल्या हुवा आस्वादरूप अभेदरूपस्वभाव वस्तूकूं अनुभव करते जे पंडित पुरुष तिनिकै दर्शन नाहीं, ज्ञान नाहीं, चारित्र नाहीं एक ज्ञायक ही है, सो ही शुद्ध है।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ।।

जैसैं अनार्य को अनार्य की भाषा विना किछू वस्तूका स्वरूप ग्रहण करावनेकूं असमर्थ हूजिये, तैसैं व्यवहार विना परमार्थका उपदेश करनेकूं समर्थ न हूजिये है ।

जैसैं प्रगटपणैं कोई म्लेच्छकूं काहू ब्राह्मण "स्वस्ति होऊ" ऐसा शब्द कह्या, सो, म्लेच्छ तिस शब्द का वाच्यवाचकसंबंध का ज्ञानतैं बाह्य हैं, तातैं ताका अर्थ किछू भी न पावता संता ब्राह्मणकी तरफ मींढाकीज्यों नेत्र उघाडि टिमकारे विना देखता रह्या, जो यानै कहा कह्या, तब तिस ब्राह्मणकी भाषा तथा म्लेच्छकी भाषा दोऊका एक अर्थ जानने वाला सो ही ब्राह्मण तथा अन्य कोई तिस म्लेच्छभाषाकूं लेकरि स्वस्ति-शब्दका अर्थ ऐसा कह्या—जो, तेरा अविनाश कल्याण होऊ, ऐसा याका अर्थ है, तब सो म्लेच्छ तत्काल उपज्या जो बहुत आनंद, तिसमयी जो अश्रुपात, तिसकरि झलकते भरि आये हैं

लोचनपात्र जाकै, ऐसा हुआ संता, तिस स्वस्तिशब्दका अर्थ समझै ही है। तैसैं ही व्यवहारी है, सोऊ "आतमा" ऐसा शब्द कहते संते जैसा आत्मशब्दका अर्थ है, ताका ज्ञानके बाह्य वर्तें है। तातैं याका अर्थ किछू न पावता संता मींढेकी ज्यों नेत्र उघाडि टिमकारे विना देखताही रहै। अर जब व्यवहारपरमार्थमार्गविषैं चलाया है सम्यग्ज्ञानरूप महारथ जानैं, ऐसा सारथीसारिखा सो ही आचार्य तथा अन्य कोई आचार्य व्यवहारमार्गमैं तिष्ठिकरि दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं निरंतर प्राप्त होय सो आत्मा है, ऐसा आत्मशब्दका अर्थ कहै, तब तत्कालही उपज्या प्रचुर आनंद जामैं पाइये ऐसा अंतरंगविषैं सुन्दर अर बन्धुर कहिये प्रबंधरूप ज्ञानरूप तरंग जाकै, ऐसा व्यवहारी जन, सो तिस आत्मशब्दका अर्थ पावै ही। ऐसैं जगत् तौ म्लेच्छस्थानीय जानना बहुरि व्यवहारनय म्लेच्छभाषास्थानीय जानना। यातैं व्यवहारकूं परमार्थका कहनहारा मानि स्थापना योग्य है। पर ब्राह्मणकूं म्लेच्छ न होना इस वचनतैं व्यवहारनयकूँ अनुसरण न करना।

जो हि सुदेणभिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ।।
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुदकेवली तह्मा ।।

जो जीव निश्चयकरि श्रुतज्ञानकरि इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्माकूं सन्मुख होयकरि जानै, तिसकूं लोकके प्रगट जाननेवाले ऋषीश्वर हैं ते श्रुतकेवली ऐसा कहे हैं। बहुरि जो जीव सर्वश्रुतज्ञानकूं जाने है, ताकूं जिनदेव श्रुतकेवली कहे हैं। काहेतैं, जातैं सर्व ज्ञान है सो आत्माही है, तातैं आत्माहीकूं जान्या यातैं श्रुतकेवली कहे है।

जो श्रुतकरि केवल शुद्ध आत्माकूं जाने है सो श्रुतकेवली है, यह तो परमार्थ है। बहुरि जो सर्व श्रुतज्ञानकूं जाने है सो श्रुतकेवली है, यह व्यवहार है। सो इहां परीक्षा दोय पक्षकरि

कहे है। जो यह कह्या हुवा सर्व ही ज्ञान आत्मा है कि अना-त्मा है? तहाँ जो अनात्मा है? तौ अनात्मा तौ नाहीं है। जातैं समस्त ही जे जडरूप अनात्मा आकाशादि पाँच द्रव्य हैं, तिनिकैं ज्ञानतैं तादात्म्यकी अनुपपत्ति है, तत्स्वरूपपणा बनै नाहीं। तातैं अन्यपक्षके अभावतैं ज्ञान है सो आत्मा है, ऐसा आया। यातैं श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है, ऐसैं होते जो "आत्माकूँ जानैं है सो श्रुतकेवली है" ऐसा ही आवै है, सो परमार्थही है। ऐसैं ज्ञान अर ज्ञानीकूँ भेदकरि कहता जो व्यवहार, तिस-करि भी परमार्थमात्रहि कहिये है, तिसतैं जुदा अधिक तौ कछु भी न कहे है। अथवा जो श्रुतकरि केवल शुद्ध आत्माकूं जानै है सो श्रुतकेवली है। ऐसैं परमार्थका कहनेका असमर्थपणा है तातैं जो सर्वश्रुतज्ञानकूं जाने है सो श्रुतकेवली है ऐसा व्यव-हार है सो परमार्थ के प्रतिपादकपणेतैं आत्माकूं प्रतिष्ठारूप करे है, प्रगटरूप स्थापे है।

ववहारोऽभूदत्थो, भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु, सम्मादिट्ठी हवदि जीवो

व्यवहारनय है सो अभूतार्थ है। बहुरि शुद्धनय है सो भूतार्थ है। यह ऋषीश्वरनिनैं दिखाया है। तहां जो जीव भूतार्थकूं आश्रित भया है सो जीव निश्चयकरि सम्यग्दृष्टि होय है।

व्यवहारनय है सो सर्व ही अभूतार्थ है तातैं अविद्यमान असत्य अभूत अर्थ है ताहि प्रगट करे है। बहुरि शुद्धनय है सो एकही है सो भूतार्थ है। तातैं विद्यमान सत्यभूत अर्थकूं प्रगट करे है। सो ही दृष्टांतकरि दिखाये है। जैसैं प्रबलकर्दमके मिलनेकरि तिरोहित कहिये आच्छादित भया है स्वाभाविक एक निर्मलभाव जाका ऐसा जो जल ताके पीवने वाले पुरुष हैं ते घणे तौ जलका अर कर्दमका भेद नाहीं करते संते तिस जलकूं मलिनहींकूं पीवै है। बहुरि केई जीव अपने हस्ततैं बखेर डार्या जो कतक कहिये निर्मली ताकै पटकनेमात्रकरि ही भया जो कर्दमका अर जलका भेद तिसपणाकरि जामैं अपना पुरुषा-

कार दिखाई है ऐसा प्रगट भया जो स्वाभाविक जलस्वभाव-रूप निर्मलभाव ताहीकूं पीवे है । तैसैं ही प्रबलकर्मका संवलन कहिये मिलना संयोग होना ताकरि आच्छादित भया है स्वाभाविक एक ज्ञायकभाव जाका ऐसा जो आत्मा ताकै अनुभव करनेवाले पुरुष हैं, ते आत्माका अर कर्मका भेद नाहीं करते व्यवहारविषैं विमोहित भया है हृदय जिनिका ते प्रगटमान है भावनिका विश्वरूपपणा अनेकरूपपणा जाकै ऐसा जो अशुद्ध आत्मा तिसहीकूं अनुभवे है । बहुरि भूतार्थ जो शुद्धनय ताकै देखने वाले हैं ते अपनी बुद्धिकरि पातन करी जो शुद्धनय ताकै अनुसार ज्ञान होनेमात्रकरि भया जो आत्माका अर कर्मका भेद, तिसपणाकरि अपने पुरुषाकाररूप स्वरूपकरि प्रगट भया जो स्वाभाविक एक ज्ञायकभाव तिसपणाकरि प्रद्योतमान है, प्रकाशमान है, एक ज्ञायकभाव जामैं, ऐसा शुद्ध आत्माकूं अनुभवे है । तातैं इहाँ जो पुरुष भूतार्थ जो शुद्धनय ताकूं आश्रय करे हैं, तेही सम्यगवलोकन करते संते सम्यग्दृष्टि होय हैं अन्य न होय हैं । इहां शुद्धनयके कतकनिर्मलीस्थानीयपणा है । तातैं कर्मतैं भिन्न आत्माके देखनेवालेनिकरि व्यवहारनय अनुसरण नाहीं करना ।

सुद्धोसुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥

परमभावदर्शिको तो शुद्धका है आदेश कहिए आज्ञा उपदेश जामैं ऐसा शुद्धनय जानने योग्य है। इहां प्रकरण शुद्ध आत्माका है, सो शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना। बहुरि जे पुरुष अपरमभाव कहिये श्रद्धाके तथा ज्ञानचारित्र के पूर्णभावकूं, नाहीं पहुंचे हैं साधक अवस्थामैं तिष्ठे हैं तिनिकैं व्यवहारका देशीपणा है अथवा ते व्यवहारकरि उपदेशने योग्य हैं ।

इहां दृष्टांतद्वारकरि कहे हैं, जे पुरुष अंतके पाककरि उतरचा जो शुद्धसुवर्ण तिसस्थानीय जो वस्तुका उत्कृष्ट असाधारणभाव तिनिकूं अनुभवे हैं । तिनिकैं प्रथम, द्वितीय अनेकपाककी परंपराकरि पच्यमान जो अशुद्धसुवर्ण तिसस्थानीय जो अनुत्कृष्टमध्यमभाव तिसके अनुभवकरि शून्यपणातैं शुद्धद्रव्यका आदेशीपणाकरि प्रगट कीया है अचलित अखंड एकस्वभावरूप एकभाव जानै ऐसा शुद्धनय है । सो ही उपरि ही उपरिका एक प्रतिवर्णिका स्थानीयपणातें जान्याहूवा प्रयोजनवान् है । बहुरि

जे केई पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाककी परंपराकरि पच्यमान जो वह ही सुवर्ण तिसस्थानीय जो वस्तुका अनुत्कृष्ट मध्यमभाव ताकूं अनुभवे हैं। तिनिके अंतके पाककरी उतरचा जो शुद्ध सुवर्ण तिस स्थानीय वस्तुका उत्कृष्टभाव ताका अनुभवकरि शून्यपणातैं अशुद्धद्रव्यका आदेशीपणाकरि दिखाया है न्यारा न्यारा एकभावस्वरूप अनेकभाव जानैं ऐसा व्यवहारनय है। सो ही विचित्र अनेक जे वर्णमाला तिसस्थानीयपणातैं जान्याहुवा तिसकाल प्रयोजनवान् है, जातैं तीर्थ अर तीर्थका फल इनि दोऊनिका ऐसा ही व्यवस्थितपणा है। इहां उक्तंच गाथा-जो जिणभयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छये मुयह। एक्केण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण उणतच्चं। अर्थ-आचार्य कहे हैं जो हे पुरुप हौ! तुम जो जिनमतकूं प्रवर्त्तावो हौ तौ व्यवहार अर निश्चय इनि दोऊ नयनिकूं मति छोडौ। जातैं एक जो व्यवहारनय ताविना तौ तीर्थ कहिये व्यवहारमार्ग ताका नाश होयगा। बहुरि अन्येन कहिये निश्चयनय विना तत्त्वका नाश होयगा।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके,
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।

सपदि समयसारं ते परंज्योतिरुच्चै,
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥

निश्चयव्यवहाररूप जे दोय नय तिनिके विषयके भेदतैं परस्पर विरोध है, तिस विरोधका दूर करन हारा स्यात्पदकरि चिन्हित जो जिनभगवानका वचन तिसविषैं जे पुरुष रमे हैं ते स्वयं कहिये स्वयमेव विनाकारण आपैआप वम्या है मोह जिनिनैं ते पुरुष इस समयसार जो शुद्ध आतमा अतिशयरूप परमज्योति प्रकाशमान ताहि शीघ्र ही अवलोकन करे हैं। कैसा है समयसार ? अनव कहिये नवीन उपज्या नाहीं है, बहुरि कैसा है ? अनय जो सर्वथा एकांतरूप कुनय ताकी पक्ष, ताकरि अक्षुण्ण कहिये खंड्या न जाय है निर्बाध है।

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या,
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं,
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किंचित् ॥

व्यवहारनय है सो यद्यपि इस पहिली पदवी जो शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति जेतैं न होय तेतैं तिसविषैं स्थाप्या है अपना पद

जानैं ऐसे पुरुषनिकूँ हस्तावलंबतुल्य कह्या। सो "हन्त" कहिये यह बडा खेद है। तथापि जे पुरुष चैतन्यचमत्कारमात्र परम अर्थ शुद्धनयका विषयभूत परद्रव्य भावनिसूं रहितकूं अतरङ्गविषैं अवलोकन करे हैं, तिनिकैं यह व्यवहारनय किछूभी प्रयोजनवान् नाहीं है।

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं,
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः।

जो इस आत्माका अन्यद्रव्यनितैं न्यारा अवलोकन करना सम्यग्दर्शन है कैसा है आत्मा? अपने गुणपर्यायनिविषै व्यापने वाला है। बहुरि शुद्धनयतैं एकपणाविषैं निश्चित है। बहुरि पूर्ण ज्ञानघन है। बहुरि जेता यह सम्यग्दर्शन है तेताहि आत्मा है। तातैं जो इस नवतत्त्वकी परिपाटीकूं छोडि यहू आत्मा ही हमारै प्राप्त होहू।

अतः शुद्धनयायत्तं
प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।

नवतत्त्वगतत्वेऽपि
यदेकत्वं न मुञ्चति ।

इहातैं आगैं जो शुद्धनयके आधीन भिन्न आत्मज्योति है सो प्रगट होय है । जो नवतत्त्वमैं गत होय रह्या है, तोऊ आपना एकपणाकूं नाहीं छोडे है ।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।
आसवसंवरणिज्जरबन्धोमोक्खो य सम्मत्तं ॥

भूतार्थनयकरि जान्या हूवा जीव, अजीव बहुरि पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध अर मोक्ष ए नव तत्त्व हैं तेही सम्यक्त्व है ।

जीवादिक नवतत्त्व हैं ते भूतार्थनयकरि जाणेसंते सम्यग्दर्शनही है यह नियम कह्या । जातैं ये नवतत्त्व जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष है लक्षण जिनिका ऐसा, तीर्थ जो व्यवहारधर्म ताकी प्रवृत्तिकै अर्थि अभूतार्थनय जो व्यवहारनय ताकरि कहे हुये हैं । तिनिविषैं एकपणा प्रगट करनहारा जो भूतार्थनय ताकरि एकपणाकूं प्राप्त करी शुद्धपणाकरी स्थाप्या जो आत्मा ताकी आत्मख्याति है लक्षण जाका ऐसी अनुभूतिका प्राप्तपणा है । शुद्धनयकरि नवतत्त्वकूं जाणै आत्माकी अनुभूति होय है इस हेतुतैं नियम है । तहाँ विकार्य जो विकारी होनेयोग्य अर विकार करनेवाला विकारक ए दोऊ तौ पुण्य हैं । बहुरि ऐसैंही विकार्य विकारक दोऊ पाप हैं । बहुरि आस्राव्य कहिये आस्रव होनेयोग्य अर

आस्रावक कहिये आस्रव करनेवाला ए दोऊ आस्रव हैं। बहुरि संवार्य कहिये संवररूप होनेयोग्य अर संवारक कहिये संवर करनेवाला ए दोऊ संवर हैं। बहुरि निर्जरनेयोग्य अर निर्जरा करनेवाला ए दोऊ निर्जरा हैं। बहुरि बन्धनेयोग्य अर बन्धन-करनेवाला ए दोऊ बन्ध हैं। बहुरि मोक्ष होनेयोग्य अर मोक्ष करनेवाला ए दोऊ मोक्ष हैं। जातैं एकहीकै आपहीतैं पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध मोक्षकी उपपत्ति बने नाहीं।

बहुरि ते दोऊ जीव अर अजीवहैं ऐसें ए नवतत्त्व हैं। इनिकूं बाह्यदृष्टिकरि देखीये तब जीवपुद्गलकी अनादिबन्धपर्यायकूं प्राप्तकरि एकपणाकरि अनुभवन करते सन्ते तौ ए नवही भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं। बहुरि एक जीवद्रव्यहीका स्वभावकूं लेकरि अनु-भवन करते सन्ते अभूतार्थ हैं। असत्यार्थ हैं। जीवके एकाकार स्वरूपमें ये नाही हैं। तातैं इनि तत्त्वनिविषैं भूतार्थनयकरि जीव एकरूपही प्रकाशमान है, तैसैं ही अन्तर्दृष्टिकरि देखीये तब ज्ञायक-भाव तौ जीव है। वहुरि जीवकै विकारका कारण अजीव है। बहुरि पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष है लक्षण जाका ऐसा केवल जीवका विकार नाहीं है। जीव के

इन विकारों का कारण पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष ये सात केवल एकले अजीवके विकार है। ऐसैं ये नवतत्त्व हैं ते जीवद्रव्यका स्वभावकूं छोडिकरि आप अर पर है कारण जाकूँ ऐसा एक द्रव्यपर्यायपणाकरि अनुभवन करते सन्ते तौ भूतार्थ हैं। बहुरि सर्वकालमैं नाहीं चिगता एक जीवद्रव्यका स्वभावकूं लेकरि अनुभवन करते संते ए अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। तातैं इनि नवतत्त्वनिविषैं भूतार्थनयकरि देखीये तब जीव है सो तौ एकरूपही प्रकाशमान है ऐसैं यहू जीवतत्त्व एकपणाकरि प्रगट प्रकाशमान हुवा सन्ता शुद्धनयपणाकरि अनुभवन कीजिये है। सो यहू अनुभवन है सो आत्मख्याति है आत्महीका प्रकाश है। बहुरि आत्मख्याति है सोही सम्यग्दर्शन है। ऐसैं यह समस्त कहना निर्दोष है बाधारहित है।

चिरमिति नवतत्वछन्नमुन्नीयमानं,
कनकमिव निमग्नं यर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं,
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥

ऐसैं नवतत्त्वनिविषैं बहुतकालतैं छिप्या हुआ यह आत्म-

ज्योति शुद्धनयकरि निकासि प्रगट किया है, जेसैं वर्णकी मालाके समूह में सुवर्णका एकाकार छिप्याकूं निकासै तैसें, सो अब भव्यजीव याकों निरन्तर अन्यद्रव्यनितैं तथा तिनितैं भयो नैमित्तिक- भावनितैं भिन्न एकरूप अवलोकन करो। यहू पदपदप्रति एकरूप चिच्चमत्कार मात्र उद्योतमान है।

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वकषेऽस्मिन्-
ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥

जो इस सर्वभेदनिका गौण करनहारा जो शुद्धनयका विषयभूत चैतन्यचमत्कारमात्र तेजःपुंज आत्मा ताकै अनुभव आये सन्ते नवनिकी लक्ष्मी है सो उदयकूं नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि प्रमाण है सो अस्तकूं प्राप्त होय है। बहुरि निक्षेप-निका समूह है सो कहूँ जाता रहै है सो हम नाहीं जाने हैं। इस सिवाय और कहां कहै द्वैतही नाहीं प्रतिभासे है।

आत्मस्वभावं परभवभिन्न,
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम्।

विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं,
प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति ॥

शुद्धनय है सो आत्माके स्वभावकूं प्रगट करता सन्ता उदय होय है। कैसा प्रगट करे है ? परद्रव्य तथा परद्रव्यके भाव तथा परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपने विभाव ऐसैं परभावनितैं भिन्न प्रगट करे है। बहुरि कैसा प्रगट करे है ? आपूर्ण कहीये समस्तपणाकरि पूर्ण स्वभाव समस्त लोकालोकका जाननहारा ऐसा स्वभावकूं प्रगट करे है। बहुरि कैसा प्रगट करे है ? आदि अंतकरि रहित, जो कछू हू आदि लेकरि काहूतैं भया नाहीं तथा कबहूँ काहूकरि जाका विनाश नाहीं ऐसा पारिणामिक भावकूं प्रगट करे है। बहुरि कैसा प्रगट करे है ? एक है, सर्व भेदभावतैं द्वैतभावतैं रहित एकाकार है, बहुरि विलय भये हैं समस्त सङ्कल्प अर विकल्पके समूह जामैं।

**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं त्तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥**

जो नय आत्माकूं अबद्धस्पृष्ट कहिये बंध्या अर स्पर्शा नाहीं, बहुरि अनन्य कहिये अन्य पना नाहीं, बहुरि नियत कहिये चलाचल नाहीं, बहुरि अविशेष कहिये जामैं विशेष नाहीं, बहुरि असंयुक्त कहिये अन्यके संयोग रहित ऐसा पांच भावरूप अवलोकन करै, ताहि, हे शिष्य तू शुद्धनय जाणि ।

जो खलु कहिये निश्चयतैं अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त, ऐसी आत्माकी अनुभूति कहिए अनुभवन सोही शुद्धनय है । सो यह अनुभूति निश्चयतैं आत्माही है । ऐसैं आत्मा ही एक प्रकाशमान है ।

इहां जो जैसा कह्या तैसैं आत्माकी की अनुभूति इन पाँच भावनिमैं कैसी है ? ताको कहें हैं जो, बद्धस्पृष्टत्व आदि पाँच भाव हैं तिनिकै अभूतार्थपणा है, असत्यार्थपणा है, तातैं शुद्धनयही आत्माकी अनुभूति है सोही दृष्टान्तकरि प्रगट दिखावै हैं । जैसैं बिसिनी कहिये कमलिनी ताका पत्र जलमें डूब्या होय ताके जलके स्पर्शनेरूप अवस्थाकरि अनुभवन करते संते जलका

स्पर्शनपणा भूतार्थ है । तौऊ एकान्ततैं जलके स्पर्शनेयोग्य नाहीं, ऐसा कमलिनी पत्रका स्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते जलका स्पर्शनपणा अभूतार्थ है असत्यार्थ है, तैसैं आत्माकूँ अनादि बद्धस्पर्शपणाकी अवस्थाकरि अनुभवन करते सन्ते बद्ध-स्पृष्टपणा भूतार्थ है । तौ एकान्ततैं पुग्दलकै स्पर्शनेयोग्य नाहीं ऐसा आत्मस्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते बद्धस्पृष्टपणा अभूतार्थ है ।

बहुरि जैसैं मृत्तिकाका ? खा, ढकणा, कोंडी, कपाल आदि पर्यायभेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते अन्यपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है । तौऊ सर्वपर्यायभेदनितैं नाहीं चिगता भेदरूप न होता जो एक मृत्तिकास्वभाव ताकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते पर्यायभेद अभूतार्थ है । तैसैं आत्माकूं नारक आदि पर्यायभेद-निकरि अनुभवन करते सन्ते पर्यायनिका अन्य अन्यपणा भूतार्थ है सत्यार्थ है । तौऊ सर्व पर्यायभेदनितैं नाहीं चिगता एक चैतन्या-कार आत्मस्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते अन्यपणा अभूतार्थ है । बहुरि जैसैं समुद्रकूँ व्यवस्थित वृद्धि हानि अवस्था-करि अनुभवन करते सन्ते अनियतपणा जो अनिश्चितपणा सो भूतार्थ है । तौऊ नित्य व्यवस्थित समुद्रस्वभावकूँ लेकरि अनु-

भवन करते सन्ते अनियतपरणा अभूतार्थ है। तैसैं आत्माकूँ वृद्धिहानिपर्यायभेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते अनियतपरणा भूतार्थ है सत्यार्थ है। तौऊ नित्य व्यवस्थितनिश्चल आत्माका स्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते अनियतपरणा अभूतार्थ है।

बहुरि जैसैं सुवर्णकूँ चीकरणा, भारी, पीला आदि गुणरूप भेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपरणा भूतार्थ है। तौऊ विलय भये हैं समस्त विशेष जामैं ऐसा स्वर्णस्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपरणा अभूतार्थ है। तैसैं आत्माकूँ ज्ञानदर्शन आदि गुणरूप भेदनिकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपरणा भूतार्थ है। तौऊ विलय भये हैं समस्त विशेष जामैं ऐसा चैतन्यमात्र आत्मस्वभावकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते विशेषपरणा अभूतार्थ असत्यार्थ है। बहुरि जैसैं जलकै अग्नि है निमित्त जाकूँ ऐसा जो उष्णसूँ मिल्या तप्तपरणारूप अवस्था तिसकरि अनुभवन करते सन्ते जलके उष्णपरणारूप संयुक्तपरणा भूतार्थ है। तौऊ एकान्ततैं शीतल जो जलका स्वभाव ताकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते उष्णसंयुक्तपरणा अभूतार्थ है। तैसैं आत्माकै कर्म है निमित्त जाकूँ ऐसा मोहसमाहितपरणारूप अवस्था

तिसकरि अनुभवन करते सन्ते संयुक्तपणा भूतार्थ है। तौऊ एकान्ततैं आपबोधका बीजरूपस्वभाव जो चैतन्यभावरूप ताकूँ लेकरि अनुभवन करते सन्ते संयुक्तपणा अभूतार्थ है।

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्ताज्-
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥

जो जगतके प्राणिसमूह सो तिस सम्यक्स्वभावकूं अनुभवन करौ। जाविषैं ए बद्ध स्पृष्ट आदि भाव हैं ते प्रगटपणैं इस स्वभावके उपरि तरते हैं, तौऊ प्रतिष्ठाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं, कैसा यह शुद्ध स्वभाव ? सर्व अवस्थामैं प्रकाशमान है। कैसैं होयकर अनुभव करो ? अपगतमोहीभूय कहिये दूरि भया है मोह जाका ऐसा होयकरि।

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बन्धं सुधी-
र्यद्यन्तः किल कोप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात् ।
आत्माऽऽत्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥

जो कोई सुबुद्धि, सम्यग्दृष्टि, भूत कहिये पहले भया अर भांत कहिये वर्तमानका अर अभूत कहिये आगामी होयगा ऐसा तीन कालसंबंधी बन्धकू अपने आत्मातैं तत्काल शीघ्र न्यारा करि, बहुरि तिस मोहकूं अपने बलपुरुषार्थतैं न्यारा करि अंतरंगविषैं अभ्यास करै देखै तौ यह आत्मा अपने अनुभवही करि जाननेयोग्य है प्रगट महिमा जाकी ऐसा व्यक्त अनुभवगोचर निश्चल शाश्वत नित्य कर्मकलंककर्दमतै रहित ऐसा आप स्तुति करनेयोग्य देवतिष्ठे है।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात्॥

ऐसैं जो पूर्वोक्तशुद्धनयस्वरूप आत्माकी अनुभूति कहिये अनुभव है सोही ज्ञानकी अनुभूति है ऐसैं प्रकट जानिकरि, बहुरि आत्माविषैं आत्माकूं निश्चल स्थापिकरि, अर सदा सर्वतरफ एक, ज्ञानघन आत्मा है ऐसा देखना।

**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥**

जो पुरुष आत्माकूं अबद्धस्पृष्ट अनन्य अविशेष इहां उपलक्षणतैं पूर्वोक्त नियत असंयुक्त ए दोऊ विशेषणभी लेना ऐसा देखे है, सो सर्वजिनशासनकूं देखे है। कैसा है जिनशासन ? अपदेश सूत्र ए दोऊ हैं मध्य जाके ऐसा है।

जो यह अबद्धस्पृष्ट अनन्य नियत अविशेष असंयुक्त ऐसैं पांचभावस्वरूप आत्माकी अनुभूति सोही निश्चयकरि समस्त जिनशासनकी अनुभूति है। जातैं श्रुतज्ञान है सो आप आत्माही है, तातैं यह आया जो आत्माकी अनुभूति है सोही ज्ञानकी अनुभूति है। इहां यह विशेष है, जो, सामान्यज्ञानका तौ आविर्भाव कहिये प्रगटपणा अर विशेष ज्ञेयाकारज्ञानका तिरोभाव कहिये आच्छादितताकरि ज्ञानमात्रही जब अनुभवकरिये तब ज्ञान प्रगट अनुभवमैं आवे है। तोऊ जे अज्ञानी हैं अर ज्ञेयनिविषैं लुब्ध कहिये आसक्त हैं तिनिकूं स्वादरूप न होय है, सोही प्रगट दृष्टांतकरि दिखावै। जैसैं अनेकप्रकारके व्यञ्जन कहिये तरकारी आदि भोजन, तिनिके संयोगकरि उपजा सामान्य

लूणका तौ तिरोभाव अर विशेष लूणका आविर्भाव, ताकरि अनुभवमैं आवता जो अनेकाकार भेदरूप लूण, सोही जे अज्ञानी अर व्यञ्जनविषैं लुब्ध ऐसैं मनुष्य, तिनिकूं लूणका विशेषभाव-रूप जे व्यञ्जन तिनिकाही स्वाद आवे है। बहुरि अन्यके संयोग रहितपणातैं उपजा सामान्यका तौ जामैं आविर्भाव अर विशेषका जामैं तिरोभाव ऐसा भावकरि एकाकार अभेदरूप लूणका स्वाद नाहीं आवे है। बहुरि परमार्थकरि देखिये तब जो विशेषका आविर्भावकरि अनुभवमैं आवता क्षाररसरूप लूण है सो ही सामान्यका आविर्भावकरि अनुभवमैं आवता क्षाररस रूप लूण है। तैसैं ही अनेकाकार ज्ञेयनिका आकारकरि करंबित कहिये मिश्ररूप सारिखापणाकरि सामान्यका तौ जामैं तिरो-भाव अर विशेषका जामैं आविर्भाव ऐसा भावकरि अनुभवमैं आवता जो ज्ञान, सो, जे अज्ञानी हैं अर ज्ञेयनिविषैं लुब्ध हैं आसक्त हैं, तिनिकुं विशेष भावरूप भेद अनेकाकाररूप स्वादमैं आवे है। बहुरि अन्यज्ञेयाकारके संयोगतैं रहितपणातैं उपजा सामान्यका जामैं आविर्भाव अर विशेषका जामैं तिरोभाव ऐसा एकाकार अभेदरूप ज्ञानमात्र सो अनुभवमैं स्वादरूप नाहीं आवे है। अर परमार्थ विचारिए तब जो विशेषके आविर्भावकरि

ज्ञान अनुभवमैं आवे है, सोही सामान्यका आविर्भावकरि ज्ञेय-विषैं आसक्त नाहीं है अर ज्ञानी हैं तिनिके अनुभवमें आवे है। बहुरि जैसैं लूणकी डली अन्यद्रव्यके संयोगका अभावकरि केवल एक लूणमात्र अनुभवन करते सन्ते एक लूणरस क्षार-पणाकरि लूणपणाकरि स्वादमैं आवे है। तैसैं आत्माभी परद्र-व्यके संयोगतैं न्यारा भावकरि एक भावकरि अनुभवन करते सन्ते सर्वतरफतैं विज्ञानघन स्वभावतैं ज्ञानपणाकरि स्वादमैं आवे है।

अखंडितमनाकुलं ज्वलदनन्तमंतर्बहिर्महः
परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते,
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ।।

तत् कहिये सो परम उत्कृष्ट मह कहिये तेज प्रकाशरूप हमारे होऊ, जो सदाकाल चैतन्यका उच्छलन कहिये परिणमन ताकरि भर्या जैसैं लूणको डली एक क्षाररसकी लीलाकूं आल-म्बन करे है, तैसैं एक ज्ञानरसकूं आलंबन करे है। बहुरि सो तेज कैसा है ? अखंडित है, अनाकुल है, बहुरि कैसा है ? 'अन्त-

र्बहिरनन्तं ज्वलत्' कहिये ग्रन्तरहित ग्रन्तर ग्रर बाह्य में दैदीप्यमान है, बहुरि सहज बहुरि 'सदा उद्विलासं' कहिये निरंतर उदयरूप है विलास जाका है।

एष ज्ञानधनो नित्य,
मात्मसिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन,
द्विधैकः समुपास्यताम् ।।

यह पूर्वोक्त ज्ञानस्वरूप नित्य ग्रात्मा है, सो सिद्धि जो स्वरूपकी प्राप्ति ताके इच्छक पुरुषनिकरि साध्यसाधकभावके भेदकरि दोय प्रकारकरि एकही सेवनेयोग्य है, सो सेवो।

**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।**

साधुपुरुषकरि दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते निरंतर सेवने योग्य हैं, बहुरि तीन हैं तौऊ निश्चयतैं एक आत्माही जानूं।

यहु आत्मा जिसभावकरि साध्य तथा साधन होय, तिसही भावकरि नित्य उपासन करने योग्य है सेवने योग्य है। ऐसैं आप निश्चयकर परनिकूं व्यवहारकरि प्रतिपादन करे हैं, जो साधुपुरुषनिकरि दर्शनज्ञानचारित्र हैं ते सदा सेवनेयोग्य हैं। बहुरि परमार्थकरि देखिये तब ए तीनो ही एक आत्माही है, जातैं ए अन्य वस्तु नाहीं है जैसैं कोई देवदत्तनाम पुरुषका ज्ञान, श्रद्धान, आचरण है, ते तिसके स्वभावकूं नाही उल्लंघते वर्ते हैं। तातैं ते देवदत्त पुरुषही है अन्य वस्तु नाहीं है। तैसैं आत्माविषैंभी आत्माका ज्ञान, श्रद्धान, आचरण हैं ते आत्माके स्वभावकूं नाहीं उल्लंघि वर्ते है। तातैं आत्माही है अन्यवस्तु नाहीं है। तातैं यह सिद्ध भया, जो एक आत्माही सेवन करनेयोग्य है। यह आपै आपही प्रकाशमान हो है।

दर्शनज्ञानचारित्रै-
स्त्रित्वादेकत्वतः स्वयं ।
मेचकोऽमेचकश्चापि
समम्ात्मा प्रमाणतः ।।

यहू आत्मा प्रमाणदृष्टिकरि देखीये तब एकैकाल मेचक कहिये अनेक अवस्थारूप भी है अर अमेचक कहिये एक अवस्थारूप भी है। जातैं याकै दर्शन-ज्ञान-चारित्रकरि तौ तीनपणा है। बहुरि आपकरि आपकै एकपणा है।

दर्शनज्ञानचारित्रै-
स्त्रिभिः परिणतत्वतः ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वात्-
व्यवहारेण मेचकः ।।

व्यवहारदृष्टिकरि देखिये तब, आत्मा एक है, तौऊ तीन स्वभावपणाकरि मेचक कहिये अनेकाकाररूप है। जातैं दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन भावनिकरि परिणमे है।

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञा-
तृत्वज्योतिषैककः ।
सर्वभावान्तरध्वंसि-
स्वभावत्वादमेचकः ।।

परमार्थ करि देखिये तब प्रगट ज्ञायकज्योतिर्मात्रकरि आत्मा एक स्वरूप है । जातैं याका सर्वही अन्यद्रव्यके स्वभाव तथा अन्य निमित्ततैं भये विभाव, तिनिका दूरि करनेरूप स्वभाव है, यातैं अमेचक है, शुद्ध एकाकार है ।

आत्मनश्चिन्तयैवालं
मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैः
साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ।।

यह आत्मा मेचक है, भेदरूप अनेकाकार है, तथा अमेचक है, अभेदरूप एकाकार है । ऐसी चिंताकरि तो पूरि पडो, साध्य आत्माकी तौ सिद्धि है सो दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनि भावनिकरि ही है, अन्यप्रकार नाहीं है यह नियम है ।

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिउण सद्दहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥

जैसैं कोई पुरुष धनका अर्थी राजाकूँ जाणिकरि श्रद्धान करै, तापीछैं ताकूँ बहुत यत्नकरि अनुचरै, ताकी नीकै सेवा करै। ऐसैं ही मोक्षका अर्थी पुरुषकरि जीवनामा राजाकूँ जानना, पीछैं तैसैं ही ताका श्रद्धान करना, पीछैं ताका अनुचरण करना, अनुभवकरि तन्मय होना।

निश्चयकरि जैसैं कोई धनका अर्थी पुरुष बडा उद्यमकरि प्रथम तो राजाकूँ जानै, जो यह राजा है। पीछैं तिसहीका श्रद्धान करै, जो यह अवश्य राजा ही है, याका सेवन कीये अवश्य धनकी प्राप्ति होयगी। पीछैं तिसहीका अनुचरण करै,

सेवन करै, आज्ञामैं प्रवर्तै, वाकूँ प्रसन्न करै। तैसैं ही मोक्षका अर्थी पुरुषकरि प्रथम तौ आत्माकूँ जानना, पीछैं तिसका श्रद्धान करना, जो यहही आत्मा है, याका आचरण कीयें अवश्य कर्म-नितैं छुटेगा, पीछैं तिसहीका अनुचरण, करना, अनुभवकरि तामैं लीन होना। जातैं साध्य की ऐसैंही सिद्धि है अन्यथा अनुप-पत्ति है। तहां जिसकाल आत्माके अनुभवमें आवते जे अनेक पर्यायरूप भेदभाव, तिनिकरि संकर कहिये मिश्रितपणा होते भी, परमविवेकके यह अनुभूति है, "सो ही मैं हूँ।" ऐसा आत्मज्ञान-करि प्राप्त होता यह आत्मा जैसैं जाण्या तैसा ही है, ऐसी प्रतीति है लक्षण जाका ऐसा श्रद्धान उदय होय है। तिस ही काल समस्त अन्यभावका भेद होनेकरि निःशंक ठहरनेकूँ समर्थ होनेतैं आत्माका आचरण उदय होता संता आत्माकूँ साधे हैं। ऐसैं तौ साध्य आत्माकी सिद्धि है तथा उपपत्ति है। बहुरि जिस काल ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान् आत्मा बाल गोपाल तांई सदाकाल आपही अनुभवमैं आवत संतै भी अनादि बंधके वशतैं परद्रव्यनिसहित एकपणाके अध्यवसाय कहिये निश्चय-करि मूढ जो अज्ञानी ताकै यह अनुभूति है। सो मैं हूँ ऐसा आत्मज्ञान नाहीं उदय होय है। ताके अभावतैं बिना जाणेका

श्रद्धान गधाके सिंगसारिखे होय है। ऐसे श्रद्धान भी नाहीं उदय होय है। तिस काल समस्त अन्यभावनिका भेद न होनेकरि निःशंक आत्माविषैं तिष्ठनेका असमर्थपणातैं आत्माका आचरण न होता संता आत्माकूँ नाहीं साधे है ऐसैं साध्य आत्माकी सिद्धिकी अन्यथाअनुपपत्ति है और प्रकारकरि न होय ताकूँ अन्यथानुपपत्ति कहिये।

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया।
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोनन्तचैतन्यचिन्हं।
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः॥

यह आत्मज्योति है, ताहि हम निरंतर अनुभवे हैं। कैसा है? अनंत अविनश्वर जो चैतन्य सो है चिन्ह जाका, काहेते अनुभवे हैं? जातैं याके अनुभवविना अन्यप्रकार साध्य आत्मा-की सिद्धि नाहीं है। कैसा है यह आत्मज्योति? कथंचित्प्रकार अंगीकार किया है तोनपणा जानैं, तौऊ एकपणातैं च्युत न भया है। बहुरि कैसा है? निर्मल जैसैं होय तैसैं उदयकूँ प्राप्त होय है।

(आगैं कोऊ तर्क करे है, जो आत्मा तो ज्ञानतैं तादात्म्य-स्वरूप है, जुदा नाहीं, तातैं ज्ञानको नित्य सेवै ही है। ज्ञानका उपासनेयोग्यपणाकरि याकूँ काहेतैं शिक्षा दीजिये है ? यह ऐसैं नाहीं है, तातैं आत्मा ज्ञानकरि तादात्म्यरूप है, तौऊ एक क्षणमात्र भी ज्ञानकूँ नाहीं सेवै है। जातैं स्वयंबुद्धत्व कहिए आपहीकरि जाननेतैं तथा बोधितबुद्धत्व कहिये परके जनावने-करि याकै ज्ञानकी उत्पत्ति होय है। ऐसे इहां फेरि पूछैं हैं, जो ऐसे हैं तो, जानने का कारण से पहले आत्मा अज्ञानी ही है। जातैं सदा ही याकै अप्रतिबुद्धिपणा है तहां आचार्य कहे हैं, यह एसे ही है, अज्ञानी ही है। बहुरि फेरि पूछैं हैं, यह आत्मा कबताई अप्रतिबुद्ध है ?)

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं ।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥

जेतैं या आत्माकै कर्म नोकर्म ते मैं हूं अर ए कर्मनोकर्म हैं ते मेरे हैं ऐसी बुद्धि है, तेतैं यह आत्मा अप्रतिबुद्ध है—अज्ञानी है।

जैसैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भावनिमैं अर पृथु कहिये चौडा अर बुध्नकहिये नीचै अवगाहरूप ऐसा उदर आदिका आकाररूप परिणये जो पुद्गलके स्कंध, तिनिविषैं यह घट है अर घटविषैं स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि भाव हैं अर पृथुबुध्नोदरादिके आकार परिणये पुद्गलस्कंध हैं, ऐसैं वस्तु अभेदकरि-अनुभूति है। तैसैं जे मोह आदि अंतरंगकर्म अर शरीर आदि नोकर्भ, ते कैसैं हैं ? पुद्गलके परिणाम हैं अर आत्माके तिरस्कार करनेवाले हैं। तिनिविषैं यह कर्मनोकर्म मैं हूँ, बहुरि मोहादिक अंतरंगकर्म अर शरीरादि बहिरंग, ते आत्माके तिरस्कार करनेवाले पुद्गलपरिणाम हैं ते ए आत्माविषैं हैं ऐसैं वस्तु अभेदकरि जेतैं काल अनुभूति है, तेतैं काल आत्मा अप्रति-

बुद्ध है अज्ञानी है, बहुरि जिस कोई कालविषैं जैसें रूपी दर्पणकी स्वपरके आकारका प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही है, अर उष्णता अर ज्वाला अग्निकी है, तैसें अरूपी जो आत्मा ताकी तौ आपपरके जाननहारी ज्ञातृता ही है ज्ञातापणा ही है अर कर्मनोकर्मपुद्गलके ही है, ऐसी आपहीतैं तथा परके उपदेशादिकतैं भेदविज्ञान है मूल जाका ऐसी अनुभूति उपजसी तिसही काल प्रतिबुद्ध होसी ज्ञानी होसी ।

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।
प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकारा संततं स्युस्त एव ।।

जो पुरुष आपहीतैं तथा परके उपदेशतैं कोईप्रकारकरि भेदविज्ञान है मूल उपपत्तिकारण जाका ऐसी अविचल निश्चल अपने आत्माविषैं अनुभूतिकूं पावे हैं, तेही पुरुष आरसेकी ज्यों आपमैं प्रतिबिंबित भये जे अनंतभावनिके स्वभाव तिनिकरि निरंतर विकाररहित होय हैं ।

यह अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कैसैं लखिये ?

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा ॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि ।
होहिदि पुणोवि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ॥
एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥

जो पुरुष आपतैं अन्य जे परद्रव्य-सचित अचित्त, मिश्र तिनिकूं ऐसैं जाने की,—मैं ए हूँ, तथा मै इनिका हूं, तथा ए मेरे हैं, तथा ए मेरे पूर्वँ थे, तथा इनिका मै पूर्वँ था, तथा ए मेरे आगामी होंयगे, तथा मै भी इनिका आगामी होऊंगा। ऐसा झूठा असत्यार्थ आत्मविकल्प करे है, सो पुरुष मूढ़ है, मोही है, अज्ञानी है। बहुरि जो पुरुष भूतार्थ जो परमार्थ वस्तुस्वरूप ताकूं जाणता संता है, सो ऐसा झूठा विकल्प नाहीं करे है, सो मूढ नाहीं है, ज्ञानी है।

जैसैं कोई पुरुष इन्धन अग्निकूं मिल्या देखि ऐसा झूठा

विकल्प करै, जो अग्नि है सौ इन्धन है, तथा इन्धन है सो अग्नि है, तथा अग्निका इन्धन पूर्वं था, इन्धनका अग्नि पूर्वं था। तथा अग्निका इन्धन आगामी होयगा अर इन्धनका अग्नि आगामी होयगा। ऐसैं इन्धनके विषैं ही अग्निका करै सो झूठा है, तिसकरि अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कोई लख्या जाय है। तैसैं ही जो कोई परद्रव्यविषैं असत्यार्थ आत्मविकल्प करै जो मैं यह परद्रव्य हूं। अर यह परद्रव्य है सो मै हूं। तथा यह मेरा परद्रव्य है। इस परद्रव्यका मै हूँ तथा मेरा यह पूर्वं था। मै इसका पूर्वं था। तथा मेरा यह आगामी होयगा। मै इसका आगामी हूंगा। ऐसैं झूठे विकल्पकरि अप्रतिबुद्धि अज्ञानी लख्या जाय है। बहुरि अग्नि है सो इन्धन नाहीं है। अग्नि है सो अग्नि ही है इंधन है, सो इन्धन ही है। तथा अग्निका इन्धन नाहीं है, इन्धनका अग्नि नाहीं है। अग्निका ही अग्नि है, इन्धनका इन्धन है। तथा अग्निका इन्धन पूर्वं भया नाहीं, इन्धनका अग्नि पूर्वं भया नाहीं। अग्निका अग्नि पूर्वं भया, इन्धनका इन्धन पूर्वं भया। तथा अग्निका इन्धन आगामी नाहीं होयगा, इन्धनका अग्नि आगामी नाहीं होयगा। अग्निका ही अग्नि आगामी होयगा, इन्धनका इन्धन आगामी होयगा।

ऐसैं कोईकै अग्निविषैं ही सत्यार्थ अग्निका विकल्प जैसैं होय, तैसैं ही मै यह परद्रव्य नाहीं हूँ, सो परद्रव्य का परद्रव्य ही है। तथा वह परद्रव्य मोस्वरूप नाहीं है। मै तो मै ही हूं, परद्रव्य है सो परद्रव्य ही है। तथा मेरा यह परद्रव्यका नाहीं इस परद्रव्यका मै नाहीं हूँ। मेरा ही मै हूँ, परद्रव्यका परद्रव्य हैं। तथा यां परद्रव्यका मै पूर्वें नाहीं भया, यह परद्रव्य मेरा पूर्वैं नाहीं भया। मेरा मै ही पूर्वैं भया, परद्रव्यका परद्रव्य पूर्वें भया। तथा यह परद्रव्य मेरा आगामी न होयगा, वाका मै आगामी नाही होंगा। मेरा मै ही आगामी होंगा, याका यह आगामी होयगा, ऐसैं स्वद्रव्य हीविषैं सत्यार्थ आत्म विकल्प होय है। यातैं यह ही प्रतिबुद्धज्ञानीका लक्षण है, याहीतैं ज्ञानी लक्ष्या जाय है।

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं,
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः,
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥

जगत् कहिये लोक है सो अनादिसंसारतैं लेकरि आस्वाद्या

अनुभूया जो मोह, ताही अबतो छोडो। बहुरि रसिकजनको रुचनेवाला उदय होता जो ज्ञान, ताही आस्वादो, जातैं इस लोकविषैं आत्मा है तो अनात्मा सहित काहूही कालविषैं एक-स्वरूप नाहीं होय है,

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
किह सो पुग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥
जदि सो पुग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सत्ता वुत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥

अज्ञानकरि मोहित है मति जाकी ऐसा जीव है सो ऐसैं कहे है—जो यहु बद्ध अबद्ध द्रव्य है सो मेरा है । कैसा है जीव ? बहुभावकरि संयुक्त है । आचार्य कहे हैं—सर्वज्ञके ज्ञानकरि देख्या जो नित्य उपयोग है लक्षण जाका ऐसा जीव है सो पुद्गलद्रव्यरूप कैसैं होय ? जो तूँ कहे है यह पुद्गलद्रव्य मेरा है । बहुरि जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप होय जाय, तौ पुद्गल भी जीवपणाकूं प्राप्त होय ऐसा आया । जो ऐसैं होय, तो यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसैं कहनेकूं तुम भी समर्थ होऊ, सो ऐसैं है नाहीं ।

अप्रतिबुद्ध कहिये अज्ञानी जीव है, सो पुद्गलद्रव्य है ताही यह मेरा है ऐसा अनुभवे है। कैसा है अज्ञानी जीव ? अत्यंत आच्छादित भया जो अपना स्वभावभाव तिसपणाकरि अस्त भया है समस्त विवेक कहिये भेदज्ञानरूप ज्योति जाका। बहुरि कैसा है ? महा अज्ञानकरि आपहीकरि विमोहित है हृदय जाका। बहुरि कैसा है ? भेदज्ञानविना अपना अर परका भेद नाहीं करी अर जे अपने स्वभाव नाहीं ऐसैं विभाव, तिनिकूं अपने करता है। जातैं जे अपने स्वभाव नाहीं ऐसैं जे परभाव, तिनिके संयोगके वशतैं अपना स्वभाव अत्यंत तिरोहित भया है छिप्या है। कैसे हैं परभाव ? एककाल अनेकप्रकारका जो बंधनका उपाधि, तिसके सन्निधान कहिये अतिनिकटता ताकरि प्राप्त भये हैं। जैसैं स्फटिकपाषाणकै अनेकप्रकारके वर्णकी निकटताकरि अनेकवर्णरूपपणा दीखै, स्फटिकका निजश्वेतनिर्मलभाव दीखै नाहीं, तैसैं ही कर्मकाउपाधिकरि शुद्धस्वभाव आत्माका आच्छादित होय रह्या है, सो दीखै नाहीं, इस प्रकारकरि पुद्गलद्रव्यकूँ अपना करी माने है। ऐसैं अज्ञानीकूं प्रतिबोधिये हैं। रे दुरात्मन् आत्माकाघात करन हारा तूँ परम अविवेककरि जैसैं तृणसहित सुंदर आहारकूं हस्ती आदि पशु

खाय, तैसैं खानेका स्वभावपणाकूं छोडि छोडि। जो सर्वज्ञज्ञान-करि प्रगट कीया नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य, सो कैसैं पुद्गलरूप भया ? जाकरि तूं यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसा अनुभवे है। कैसा है सर्वज्ञका ज्ञान ? दूरि किये है समस्त संदेह विपर्यय अनध्यवसाय जानैं। बहुरि कैसा है ? विश्व कहिये समस्तवस्तु ताकै प्रकाशनेको एक अद्वितीय ज्योति है। ऐसैं ज्ञानकरि दिखाया है। बहुरि जो कदाचित् कोई प्रकार जैसैं लूण तौ जलरूप होय जाय है, जल लूणरूप होय जाय है। तैसैं जीवद्रव्य तौ, पुद्गलद्रव्यरूप होय, अर पुद्गलद्रव्य जीवरूप होय, तौ तेरी "पुद्गलद्रव्य मेरा है ऐसी" अनुभूति बनै सो तौ कोई प्रकार भी द्रव्यस्वभाव पलटै नाहीं। सो ही दृष्टांतकूं स्पष्ट करे हैं। जैसैं क्षारपणा है लक्षण जाका ऐसा लूण है सो तौ जलरूप होता देखिये है बहुरि द्रवत्व है लक्षण जाका ऐसा जल है सो लूणरूप होता देखिये है। जातैं लूणका क्षारपणाकै अर जलका द्रवपणाकै सहवृत्तिका अविरोध है। यह होना विरोधरूप नाहीं है। तैसैं नित्य उपयोगलक्षण तौ जीवद्रव्य है, सो तो पुद्गलद्रव्य होता न देखिये है। बहुरि नित्य अनुपयोग जडलक्षण पुद्गलद्रव्य है, सो जीवद्रव्यरूप होता न देखिये है।

जातैं प्रकाशतमकी ज्यौं उपयोग अनुपयोगकै सहवृत्तिका विरोध है। जड चेतन कदाचित् भी एक होय नाहीं। तातैं तूं सर्वप्रकार करि प्रसन्न होऊ, तेरा चित्त उज्ज्वल करी सावधान होऊ। अपने ही द्रव्यकूं अपना अनुभवरूप करी। ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहली सन्,
अनुभव भवमूर्त्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥

भाई! तूं कथमपि कहिये कोई ही प्रकारकरि बडा कष्ट-करि तथा मरिहूकरि तत्त्वनिका कौतूहली हुवा संता, इस शरीरादि मूर्तद्रव्यका एक मुहूर्त दोय घडी पाडोसी होऊ, अर आत्मा का अनुभव करी। जाकरि अपने आत्माकूं विलासरूप सर्व परद्रव्यतैं न्यारा देखिकरि इस शरीरादिमूर्तिक पुद्गलद्रव्य-करि सहित एकपणाका मोहकूं शीघ्र छोडैगा।

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।

अप्रतिबुद्ध कहे हैं, जो जीव है सो शरीर नाहीं है, तौ तीर्थंकर अर आचार्य इनिकी स्तुति करी है सो सर्वही मिथ्या होय है झूठी होय है। तिस कारणकरि हम जाने है आत्मा यह देहही है।

जो ही आत्मा है सो ही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है। ऐसैं नाहीं होय तौ तीर्थंकर आचार्यनिकी ऐसी स्तुति करी है सो सारी मिथ्या होय।

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः।।

ते तीर्थंकर आचार्य वंदिवे योग्य हैं। कैसैं हैं ते ? अपनी देहकी कांतिकरि तौ दशदिशानिकूं स्नपन करे हैं, धोवे हैं, निर्मल करे हैं। बहुरि अपने तेजकरि तेजतैं उत्कृष्ट जो सूर्या-

दिक तेजस्वी तिनिका तेजकूं रोके हैं । बहुरि ते रूपकरि लोकनिके मनकूं हरे हैं । बहुरि दिव्यध्वनिवाणीकरि काननविषैं साक्षात् सुख अमृत वर्षावे हैं । बहुरि एक हजार आठ लक्षणनिको धारे हैं ऐसैं हैं । इत्यादिक तीर्थंकर आचार्यनिकी स्तुति है । सो सर्वही मिथ्या ठहरे हैं । तातैं हमारै तौ यह ही एकांतकरी निश्चयप्रतिपत्ति है, जो आत्मा है सोही शरीर है पुद्गलद्रव्य है, ऐसा अप्रतिबुद्धने कह्या । तहां आचार्य कहे हैं, जो ऐसैं नाहीं है । तूं नयविभागका जाननेवाला नाहीं है । नयविभाग ऐसा है, कहै हैं ।

वहहारणयो भासदि जीवो-देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकठ्ठो॥

व्यवहारनय है सो तौ, जीव अर देह एक ही है ऐसा कहे है। बहुरि निश्चयनयके जीव अर देह कदाचित् भी एकपदार्थ नाहीं हैं।

जैसैं इस लोकविषैं सुवर्ण अर रूपाकूं गालि एक कीये एकपिंडका व्यवहार होय है, तैसैं आत्माकै अर शरीरकै परस्पर एकक्षेत्रावगाहकी अवस्था होतैं एकपणाका व्यवहार है, ऐसैं व्यवहारमात्रहीकरि आत्मा अर शरीर का एकपणा है। बहुरि निश्चयतैं एकपणा नाहीं है, जातैं पीला अर पाँडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रूपा हैं, तिनिकैं जैसैं निश्चय विचारिये तब अत्यंत भिन्नपणाकरि एकपदार्थपणाकी अनुपपत्ति है, तातैं नानापणा ही है। तैसैं ही आत्मा अर शरीर उपयोग अनुपयोग स्वभाव हैं। तिनिकैं अत्यंतभिन्नपणातैं एकपदार्थपणाकी प्राप्ति नाहीं तातैं नानापणा ही है। ऐसा यह प्रगट नयविभाग है। तातैं व्यवहारनयही करि शरीर के स्तवनकरि आत्माका स्तवन बने है।

इणमराणं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी ।
मराणदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥

मुनि है सो यह जीवतैं अन्य पुग्दल देह ताकि स्तुति करी अर यह माने है, जो, मैं केवली भगबानकी स्तुति करी वंदना करी ।

जैसैं रूपाका गुण जो पांडुरपणा, ताका नामकरि सुवर्णकूं पांडुर ऐसा नामकरि कहिये सो व्यवहारमात्रकरि कहिये है । परमार्थ विचारिये तब सुवर्णका स्वभाव पांडुर नाहीं है, पीत है । तैसैं ही शुक्लकरक्तपणा आदिक शरीरके गुण हैं, जाके स्तवनकरि, तीर्थंकर केवलीपुरुषकूं कहिये शुक्ल हैं रक्त हैं ऐसा स्तवन करीये हैं, सो यह स्तवन व्यवहारमात्रकरि है । परमार्थ विचारिये तब शुक्लरक्तपणा तीर्थंकर केवली पुरुषका स्वभाव है नाहीं । तातैं निश्चयनयकरि शरीरका स्तवन करि आत्माका स्तवन नाहीं बने है ।

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि
होंति केवलिणो ।
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं
थुणदि ॥

सो स्तवन निश्चयविषैं युक्त नाहीं है जातैं शरीरके गुण हैं ते केवलीके नाहीं हैं। जो केवलीके गुणनिकूँ स्तवे है सो ही परमार्थकरि केवलिकूँ स्तवे है।

सुवर्णकै रूपेका गुण पांडुरपणा ताका अभाव है, तातैं पांडुरपणा नामकरि सुवर्णका नाम नाहीं बने है, सुवर्णके गुण जे पीतपणा आदि, तिसहीके नामकरि सुवर्णका नाम होय है। तैसैंही तीर्थंकर केवली पुरूषके शरीरके गुण जे शुक्लरक्त-पणा आदि, तिनिका अभाव है, तातैं निश्चयतैं शरीरके गुणके स्तवनकरि तीर्थंकर केवलीपुरुषका स्तवन नाहीं होय है, तीर्थं-कर केवली पुरुषके गुणके स्तवनकरि ही ताका स्तवन होय है।

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ।।

जैसैं नगरका वर्णन करते सन्ते राजाका वर्णन नाहीं किया होय है, तैसा देहका गुणकूं स्तवते संते केवलीके गुण नाहीं स्तवनरूप कीये होय हैं ।

प्रकारकवलिताम्बर मुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम् ।
पिवतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ।।

यह नगर है सो कैसा है ? प्राकार कहिये कोट, ताकरि तो ग्रस्या है आकाश जानैं ऐसा है । बहुरि उपवन कहिये बाग, तिनिकी राजी कहिए पंक्ति, तिनिकरि निगल्या है भूमितल जानै ऐसा है । बहुरि कैसा है ? कोटके चौगिरद खाईका वलयकरि मानूं पातालकूं पीवे ही है, ऐसा है । ऐसैं नगरका वर्णन करते संते राजा याकै आधार है तौऊ, कोट बाग खाई आदि सहित राजा नाहीं है । तातैं राजाका वर्णन याकरि नाहीं होय

है। तैसैंही तीर्थंकरका स्तवन शरीरका स्तवन कीयें नाहीं होय है।

नित्यमविकारसुस्थित-सर्वाङ्गमपूर्वसहजलावण्यम् ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ।।

जिनेन्द्रका रूप है सो उत्कृष्ट जैसा होय तैसैं जयवंत वर्तै है। कैसा है ? नित्य ही अविकार अर भलै प्रकार सुखरूप तिष्ठ्या है सर्वांग जामैं। बहुरि कैसा है ? अपूर्व स्वाभाविक है अर जन्महीतैं लेकरि उपजा है लावण्य जामैं। बहुरि कैसा है ? समुद्रकी ज्यों क्षोभ रहित है, चलाचल नाहीं है। ऐसैं शरीर का स्तवन करते भी तीर्थंकर केवली पुरुष के शरीरका अधिष्ठातापणा है, तौऊ सुस्थिति सर्वांगपणा अर लावण्यपणा आत्माका गुण नाहीं। तातैं तीर्थंकर केवलीपुरुषके इनि गुणनिका अभावतैं याका स्तवन न होय। अब निश्चय-स्तुति कहे हैं।

जो इन्द्रिये जिणत्ता णाणसहावाधिग्रं मुणदि ग्रादं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदासाहू ॥

जो इन्द्रियनिकूँ जीतकरि ज्ञानस्वभावकरि ग्रन्यद्रव्यतैं ग्रधिका ग्रात्माकूँ जाने है ताकूँ निश्चयते जितेन्द्रिय ऐसा; जे परमार्थ तिष्ठैं साधु हैं, ते कहे हैं।

जो मुनि द्रव्येंद्रिय तथा भावेन्द्रिय तथा इन्द्रियनिके विषय इनि तीनौंहीकूँ ग्रापतैं न्याराकरि ग्रर समस्त ग्रन्यद्रव्यनितैं भिन्न ग्रात्माकूँ ग्रनुभवे है, सो निश्चयकरि जितेन्द्रिय है। कैसे हैं द्रव्येंद्रिय ? ग्रनादि ग्रमर्यादरूप जो बन्धपर्याय, ताके वश-करि, ग्रस्त भया है समस्त स्वपरका विभाग जिनिकरि। बहुरि कैसे हैं ? शरीरपरिणामकूँ प्राप्त भए हैं। तिनिकूँ तो निर्मल जो भेदका ग्रभ्यासका प्रवीणपणा, ताकरि पाया जो ग्रन्तरंग-विषैं प्रगट ग्रतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव, ताका ग्रवलंबन, ताके बल-करि ग्रापतैं न्यारे किये हैं, यह ही जीतना। बहुरि कैसैं हैं भावेंद्रिय ? न्यारे-न्यारे विशेषनिकूं लिए जे ग्रपने विषय तिनि-

विषैं व्यापारपणाकरि विषयनिकूँ खंड-खंड ग्रहण करते हैं। तिनिकूँ प्रतीतिमैं आवती जो अखंड एक चैतन्यशक्ति, ताकरि आपतैं न्यारे जाने है, इनिका एही जीतना। बहुरि कैसे हैं इन्द्रियनिके विषय ग्राह्य-ग्राहकलक्षण जो संबंध ताकी निकटताके वशकरि अपने संवेदन अनुभवकरि सहित परस्पर एकसे होय दीखे हैं, तिनिकूं अपनी चैतन्यशक्तिके आपही अनुभवमैं आवता जो असंगपणा अमिल मिलाप ताकरि भावेंद्रियनिकरि ग्रहे हुये जे स्पर्शादिकअर्थ, तिनिकूं आपतैं न्यारे किये हैं, इनिका एही जीतना। ऐसैं ज्ञेयज्ञायकका संकरनामा दोष आवै था, ताके दूरि होनेकरि आत्मा एकपणाविषैं टंकोत्कीर्ण ठहर्या। सो यह काहे करि ऐसा जान्या? समस्तपदार्थनिके तो उपरि तरता जानता संता भी तिनिरूप नाहीं होता अर प्रत्यक्ष उद्योतपणाकरि नित्य ही अंतरंगविषैं प्रकाशमान अर अनपायी अविनश्वर अर आपहीतैं सिद्ध भया अर परमार्थरूप ऐसा भगवान् जो ज्ञानस्वभाव ताकरि सर्व अन्यद्रव्यतैं परमार्थतैं जुदा जान्या, ऐसैं आत्माकूं जाणै। सो जितेंद्रिय जिन है। ऐसैं एक तो यह निश्चयस्तुति भई। आगैं भाव्यभावक संकरदोष परिहार करि स्तुति कहे हैं।

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ।

जो मुनि मोहकूँ जीतकरि अपने आत्माकूं ज्ञानस्वभावकरि अन्यद्रव्य भावनितैं अधिका जानै तिस मुनीकूँ परमार्थके जानने वाले जितमोह ऐसा जाने हैं, कहे हैं ।

जो मुनि है सो फल देनेकी सामर्थ्यकरि प्रगट उदयरूप होय अर भावकपणाकरि प्रगट होता जो मोह, ताही, तिसके अनुसार है प्रवृत्ति जाकी, ऐसा जो अपना आत्मा भाव्य, ताकूं भेदज्ञानके बलतैं दूरिहीतैं न्यारा करनेकरि मोहकूँ न्यारा करि, अर तिरस्कार करनेतैं दूरि भया है समस्त भाव्यभावक संकर-दोष जामैं, तिसपणाकरि एकपणा होते, टंकोत्कीर्ण निश्चल एक अपने आत्माकूं अनुभवे है । सो जीत्या है मोह जानें ऐसा जिन है । कैसा है आत्मा ? समस्तलोकके उपरि तरता अर प्रत्यक्ष उद्योतपणाकरि नित्यहि अंतरंगविषैं प्रकाशमान अवि-नासी अर आपहीतैं सिद्ध भया परमामार्थरूप भगवान् ऐसा जो ज्ञानस्वभाव ताकरि, अन्यद्रव्यके स्वभावकरि होनेवाले जे

सर्व ही अन्यभाव, तिनितें परमार्थकरि अतिरिक्त कहिये अधिका है, न्यारा है। ऐसा ज्ञानस्वभाव अन्यभावनिमें नाहीं है ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्माकूं अनुभवे है।

सो जितमोह जिन है। ऐसें भाव्यभावकभाव के संकरदोष-परिहार, दूसरी निश्चयस्तुति है। इहां गाथामें एक मोहहीका नाम लिया, तातैं मोहका पद पलटिकरि, ताकी जायगा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय ए ग्याह तो इस सूत्रकरि, अर श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए पांच इंद्रियसूत्रकरि, ऐसें सोलह पद पलटनेतें, सोलह सूत्र न्यारे न्यारे व्याख्यानरूप करने, अर इस ही उपदेशकरि अन्य भी विचारणे। आगैं भाव्यभावकभावके अभावकरि निश्चय-स्तुति कहे हैं। गाथा—

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज
साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भरणदि सो णिच्छय-
विदूहिं ॥

जीत्या है मोह ज्यानें ऐसें साधुके, जिसकाल मोह है सो क्षीण होय सत्तामैंसूं नाश होय, तिसकाल, जाननेवाले हैं, ते निश्चयकरि तिस साधूकूं क्षीणमोह ऐसा नाम कहे हैं।

इस निश्चयस्तुविषैं जो पूर्वोक्तविधानकरि मोहकूं तिरस्कार करि, जैसा कह्या तैसा ज्ञानस्वभावकरि, अन्यद्रव्यतैं अधिक आतमाका अनुभव करनेकरि, जितमोह भया, ताकै जिसकाल अपने स्वभावभावकी भावनाका भलैप्रकार अवलम्बन करनेतैं मोहका सन्तानका अत्यंत विनाश ऐसा होय, 'जो फेरि ताका उदय नाहीं होय है' ऐसा भावकरूप मोह, जिसकाल क्षीण होय, तिसकाल भावकमोहका क्षय होतैं, आत्मा के विभावरूप भाव्यभावका भी अभाव होय। ऐसैं भाव्यभावकभावका अभाव करि एकपणा होतैं, टंकोत्कीर्ण निश्चल परमात्माकूं प्राप्त हुवा

संता 'क्षीणमोह जिन' ऐसा कहिये । यह तीसरी निश्चयस्तुति है ।

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चयान्नुः
स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्वतः ।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवेन्-
नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥

कायकै अर आत्माकै व्यवहारनय करि एकपणा है । बहुरि निश्चयन करि एकपणा नाहीं है। याहीतैं शरीरके स्तवनतैं आत्मापुरुषका स्तवन व्यवहारनयकरि भया कहिये, अर निश्चयतैं न कहिये । निश्चयतैं तौ चैतन्यके स्तवनतैं ही चैतन्यका स्तवन होय है । सो चैतन्यका स्तवन इहाँ जितेंद्रिय, जितमोह, क्षीणमोह ऐसैं कह्या तैसैं होय है । तातैं यह सिद्ध भया—तो अज्ञानिने तीर्थंकरके स्तवनका प्रश्न किया था ताका यह नय विभागकरि उत्तर दिया, ताके बलतैं आत्माकै अर शरीरकै एकपणा निश्चयतैं नाहीं है ।

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां ।
नयविभजनयुक्त्यात्यंतमुच्छादितायां ॥

अवतरति न बोधो बोधमेवाद्यकस्य ।
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥२८॥

ऐसैं परिचयरूप कीया है वस्तुका यथार्थस्वरूप जिनिनैं ऐसैं मुनीनैं आतमा अर शरीरके एकपणाकूं नयके विभागके युक्तिकरि अत्यन्त उच्छादन किया निषेध्या है। याकै होतैं, तत्कालज्ञान है सो यथार्थपणाकूं कौन पुरुषकै अवतार न धरै। अवश्य अवतार धरै ही धरै। कैसा होयकरी ? अपना निज-रसका वेगकरि खेंच्या हूवा प्रगट होता एकस्वरूप होयकरि।

णाणं सव्वे भावे पच्चक्खादि परेत्ति णादूण ।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥

जाकारणतैं सर्वही जे भाव आपसिवाय हैं, ते पर हैं, ऐसैं जानिकरि प्रत्याख्यान करे हैं, त्यागे हैं। तातैं जो पर है यह जानना है सोही प्रत्याख्यान है। यह नियमतैं जानना।

जातैं यह ज्ञाताद्रव्य आत्मा भगवान् है, सो अन्यद्रव्यके स्वभावतैं भये ऐसैं जे अन्य समस्त भाव, तिनिकूं अपने स्वभावभावकरि नाहीं व्यापनेकरि परपणाकरि जानि अर त्यागे है। तातैं जो पहलैं जानैं जान्या है सोही पीछैं त्यागे है। अन्य तौ कोई त्यागनेवाला नाहीं है। ऐसैं त्यागभाव आत्माही विषैं निश्चय करि अर त्यागके समये प्रत्याख्यान करनेयोग्य जे परभाव, तिनिकी उपाधिमात्र प्रवत्या जो त्यागका कर्तापणाका नाम ताके होतैं भी परमार्थकरि देखिये, तब परभाव का त्याग का कर्तापणाका नाम आपको नाहीं है। आप तौ या नामतैं रहित है, ज्ञानस्वभावतैं छूट्या नाहीं है, तातैं प्रत्याख्यान ज्ञानही है ऐसा अनुभव करना।

जह णाम कोवि पुरिसो
परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे णाउण विमुंचदे णाणी ।।

जैसे लोकमैं कोई पुरुष परवस्तूकूँ ऐसैं जानैं, जो यह पर-वस्तु है, तब ऐसैं जानि परवस्तूकूं त्यागे है। तैसैं ही ज्ञानी है सो सर्वही परभावनिकूं ए परभाव हैं ऐसा जानि तिनकूँ त्यागे है।

जैसैं कोई पुरुष धोबीकेसूं दूसरे का वस्त्र ल्याय, तिसकूं भ्रमकरि अपना जानि वोढिकरि सूता आप ऐसैं न जान्या "जो यह दूसरे का है," पीछैं दूसरे नैं तिस वस्त्रका पल्ला पकड़ि खेंचिकरि उघाडि नागा किया, अर कही, "जो शीघ्र जागी, सावधान होऊ, मेरा वस्त्र बदले आया है सो मेरा मोकूं दोऊ," ऐसा वारंवार वचन कह्या सो सुणता संता, तिस वस्त्रके चिह्न समस्त देखि परीक्षा करि ऐसा जान्या, 'जो यह वस्त्र तौ दूसरेका ही है' ऐसा जानिकरि ज्ञानी भया संता तिस परके वस्त्रकूं शीघ्र ही त्यागे है। तैसें ज्ञानी भी भ्रमकरि परद्रव्यके भावनिकूँ ग्रहण करि अपने जानि, आत्मविषय करि एकरूपकरि सूता

है, बेखबरी हुआ थका आपहीतैं अज्ञानी होय रह्या है। जब गुरु याकूँ सावधान करै, परभाव का भेदज्ञान कराय, एक आत्मभावरूप करै, कहै, जो "तूं शीघ्र जागो, सावधान होऊ, यह तेरा आत्मा है तो एक ज्ञानमात्र है, अन्य सर्व परद्रव्यके भाव हैं" तब वारंवार यह आगमके वाक्य सुणता संता समस्त अपने परके चिह्नकरि भलैप्रकार परीक्षा करि, ऐसा निश्चय करै, जो मैं एक ज्ञानमात्र हूँ, अन्य सर्व परभाव हैं, ऐसें ज्ञानी होयकरि सर्व परभावनिकूं तत्काल छोडे है।

अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगा
दनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥

यह परभावके त्यागके दृष्टांतकी दृष्टि है सो "पुरानी न पडे ऐसें जैसें होय तैसें" अत्यंत वेगतैं जेतैं प्रवृत्तिकूं नाहीं प्राप्त होय है तापहलै ही तत्काल सकल अन्यभावनिकरि रहित आपही यह अनुभूति प्रगट होती भई।

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवग्रोग एव ग्रहमिक्को ।
तं मोह णिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ।।

जो ऐसा जानना होय, जो यह मोह है सो मेरा कछू भी सम्बन्धी नाहीं है, मैं ऐसा जानू हूँ, जो एक उपयोग है सोही मैं हूँ, ऐसैं जाननेकूं मोहतैं निर्ममत्वपणा सिद्धांतके तथा ग्रपने परके स्वरूपरूप समयके जाननेवाले जाने हैं ते कहे हैं ।

मैं सत्यार्थपणें ऐसा जानूं हूँ, जो यह मोह है, सो मेरा कछू भी लागता नाहीं कैसा है यह? इस मेरे ग्रनुभवनमैं फल देनेकी सामर्थ्यकरि प्रगट होय, भावकरूप होता जो पुद्गलद्रव्य, ताकरि रच्या हुवा है, सो मेरा नाहीं है जातैं मैं तौ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव हूँ । यह जड है, सो परमार्थतैं परके भावको परका भावकरि भागने का ग्रसमर्थपणा है, तो इहां कहा जाणिये है ? जो स्वयमेव समस्त वस्तूका प्रकाशनेविषैं चतुर विकासरूप भई ग्रर निरंतर शाश्वती प्रतापसंपदा जामैं पाईये ऐसी चैतन्यशक्ति, तिसमात्र स्वभावभावकरि भगवान् ग्रात्मा-

हीकूं जाणीये है—जो मैं हूँ सो परमार्थकरि एक चिच्छक्तिमात्र हूं। तातैं समस्तद्रव्यनिके परस्पर साधारण एकक्षेत्रावगाहका निवारण करनेका असमर्थपणातैं "जैसैं दही अर खांड मिली शिखरणी होय, तब दही खांड एकसे होय रहे हैं तौऊ प्रगट खाटा मीठा स्वादके भेदतैं न्यारे-न्यारे जाने जाय हैं, तैसैं" स्वादभेदतैं जड न्यारे जाने जायहैं, तातैं मोहप्रती मैं निर्मम ही हूँ। जातैं यह आत्मा, सदाकाल ही आपणौं एकरूपपणाकूं प्राप्त हुवा अपना स्वभावरूप समय, ताविषैं तिष्ठे है। ऐसैं भावक-भाव विवेक भया।

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं
चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः
शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥

मैं इस लोकमें आपहीकरि अपने एक आत्माकूं अनुभवूं हूँ। कैसी है मेरी आत्मा ? 'सर्वतः' कहिये सर्वांगकरि अपने निज-रस जो चैतन्यका परिणमन, ताकरि पूर्ण भर्या ऐसा है भाव जामैं, याहीतैं यह मोह है सो मेरा किछू भी लागता नाहीं है,

याके अर मेरे किछू भी नाता नाहीं है। मै तो शुद्ध चैतन्यका 'घन' कहिये समूहरूप तेजपुंजका निधि हूँ।

नोट—ऐसैं ही मोहपद है ताकूं पलटिकरि राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए सोलह पद न्यारे न्यारे सोलह गाथासूत्रकरि व्याख्यान करना अर इसही उपदेशकरि अन्य भी विचारने। आगैं ज्ञेयभावतैं विवेक को कहे हैं।

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहममिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया विंति ॥

जो ऐसा जानना होय—जो ए धर्म आदिक द्रव्य हैं ते मेरे किछू भी लागते नाहीं है। मैं ऐसा जानूँ हूँ, जो एक उपयोग है सोही मैं हूँ। ऐसैं जाननेकूं धर्मद्रव्यतैं निर्ममत्वपणा समय सिद्धान्त तथा अपना परका स्वरूपरूप समय के जानने वाले पुरुष हैं ते जाने हैं, कहे हैं।

ए धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्य जीव ऐसैं सर्वही परद्रव्य हैं, ते आत्माविषैं प्रकाशमान हैं। कैसैं सो कहैं हैं—अपने निजरसकरि प्रगटभया अर निवार्या न जाय ऐसा है फैलना जाका, अर समस्त पदार्थसमूहके ग्रसनेका है स्वभाव जाका, ऐसी जो प्रचंड चिन्मात्रशक्ति, ताकरि ग्रासीभूत करने करि मानू अत्यंत निमग्न हो रह्या है, ज्ञानमैं तदाकार होय डूब रहे है ऐसैं। तौऊ टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावपणाकरि परमार्थतैं अंतरंगतत्त्व सो तौ मैं हूं अर ते परद्रव्य, तिस मेरे

स्वभावतैं भिन्नपणाकरि परमार्थतैं बाह्यतत्त्वपणाकूं छोडनेकूं असमर्थ हैं, धर्म आदि मेरे सम्बन्धी नाहीं हैं। इहां ऐसा जानिये जो यह आत्मा चैतन्यतैं आप ही उपयुक्त हुवा संता, परमार्थतैं अनाकुल जैसैं होय तैसैं, सर्व आकुलतासूं रहित होय-करि एक आत्माहीका अभ्यास करना संता है, सो आत्माकरि आत्मा ही जानिये है, जो मैं प्रगट निश्चयकरि एक ही हूँ, तातैं संवेध संवेदक भावमात्रतैं उपज्या जो परद्रव्यनितैं परस्पर मिलना, ताके होते भी, प्रगट स्वादमैं आवता जो स्वभाव का भेद, तिसपणाकरि धर्म, अधर्म, आकाश काल, पुद्‌गल अन्य-जीव, तिनिप्रति मैं निर्मम हौ। जातैं सदा ही काल आपविषैं एकपणाकरि प्राप्त होनेकरि समय कहिये पदार्थनिकी याही व्यवस्था है, अपने स्वभावकूं कोई छोड़ता नाहीं है, ऐसैं अनुभव करनेतैं ज्ञेयभावनितैं विवेकभया कहिये।

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः॥

ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार होतैं, सर्वही जे अन्य भाव तिनसे विवेक तब यह उपयोग है सो अपने आपही एक आत्माहीकूं धारता संता प्रगटभया है परमार्थ जिनिका ऐसैं जे दर्शनज्ञानचारित्र तिनिकरि करी है परिणति जाने, ऐसाहूवा संता, अपना आत्माराम जो आत्मारूपी बाग क्रीडावन, ताहिविषैं प्रवर्ते है, अन्य जायगा न जाय है।

ऐसैं दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप परिणया जो आत्मा ताके स्वरूपका संचेतन कैसा होय है ? ऐसैं कहता संता इस कथनकूं संकोचे है।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंशणणाणमइओ सदारूवी
णवि अत्थि मज्झ किंचिव अरणणं परमाणुमित्तंपि ।।

जो दर्शनज्ञानचारिरूप परिणया आत्मा, सो ऐसा जाने है, जो मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, अरूपी हूँ, निश्चयकरि सदाकाल ऐसा हूँ अन्य परमाणुमात्र भी मेरा किछू नाहीं है ।

निश्चयकरि ऐसा है । जो यह आत्मा अनादि मोहरूप अज्ञानतैं उन्मत्तपणाकरि अत्यंत अप्रतिबुद्ध अज्ञानी था, सो यापरि अनुरागी जो गुरु ताकरि निरंतर प्रतिबोध्या हुवा, कोई प्रकार बडा भाग्यतैं समझया सावधान भया, तब "जैसें काहूकै हाथविषैं मुठीमैं धरया हुआ सुवर्ण था सो भूलि गया फेरि यादिकरि देखै" तिस न्यायकारी अपना परमेश्वर सर्वसामर्थ्यका धरानेवाला आत्माकूं भूलि रह्या था, सो जाणिकरि ताका श्रद्धानकरि, अरताहीका आचरणिरूप तिसतैं तन्मय होयकरि भलैप्रकार आत्माराम हूवा, जो मैं चिन्मात्र ज्योती हूं, सो मेरे ही अनुभवकरि प्रत्यक्ष जानू हूं, जो समस्त क्रमरूप अर अक्रमरूप प्रवर्तते जे व्यावहारिक भाव तिनिकरि चिन्मात्र आकारकरि तौ भेदरूप न भया हूँ तातै मैं एक हूं । बहुरि नर नारक आदि

जीवके विशेष अर अजीव, पुण्य, पाप आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मौक्षलक्षण जे व्यावहारिक नवतत्त्व, तिनितैं टंकोत्कीर्ण जो एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव, ताकरि अत्यंत जुदापणातैं मैं शुद्ध हूँ। बहुरि चिन्मात्र पणातैं सामान्य विशेष जो उपयोग, ताकूं नाहीं उल्लंधनेतैं, मैं दर्शनज्ञानमय हूँ। बहुरि स्पर्श, रस गंध, वर्ण हैं निमित्त जाकूं ऐसा जो संवेदन, तिसरूप परिणम्या हूँ। तौऊ स्पर्श आदि रूप सदा आपही न परिणमनतैं परमार्थतैं सदा ही अरूपी हूँ। ऐसैं सर्वतैं न्यारा ऐसा स्वरूपकूँ अनुभवता सन्ता मै प्रताप सहित हूँ। ऐसैं प्रतापरूप होतैंके मेरे-वाह्य अनेकप्रकार स्वरूपकी संपदाकरि समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं। तौऊ मोकूं परद्रव्य परमाणुमात्र भी किछू अपने भावकरि नाहीं प्रतिभासे हैं, जो मेरे भावकपणाकरि तथा ज्ञेयपणाकरि मौतैं एक होयकरि फेरि मोह उपजावैं। जातैं मेरे निजरसतैं ही ऐसा महान् ज्ञान प्रगट भया है, जानैं मोहकूँ मूलतैं उपाडिकरि दूरि किया हैं, जो फेरि जाका अंकुर नाहीं उपजै ऐसा नाश किया।

मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ता; ।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीभरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधुः ।।३२।।

इति श्रीसमयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ पूर्वरंग समाप्तः ।

यह ज्ञानसमुद्र भगवान् आत्मा है सो विभ्रमरूप आडी चादर थी ताकूं समूलतैं डवोयकरि आप सर्वांग उन्मग्न भया है। सो अब समस्त लोक हैं ते याके शांतरसविषैं एकैकाल ही अतिशयकरि मग्न होऊ। कैसा शांतरस ? समस्तलोकताई उछल्या है।

जैसें समुद्रके आडा किछू आवै तब जल दीखै नाहीं, अर जब आड दूरी होय तब प्रगट होय तब, लोककूं प्रेरणा योग्य होय, जो या जलविषैं सर्व लोक स्नान करौ। तैसैं यह आत्मा विभ्रमकरि आच्छादित था, तब याका रूप न दीखे था, अब विभ्रम दूरि भया तब यथास्वरूप प्रगट भया, अब याके वीतराग विज्ञानरूप शान्तरसविषैं एकाकाल सर्व लोक मग्न होऊ। ऐसैं आचार्य प्रेरणा करी है। अथवा ऐसा भी अर्थ है। जो

आत्मा का अज्ञान दूरि होय तब केवलज्ञान प्रगट होय है, तब समस्त लोकमें तिष्ठते पदार्थ एकैकाल ज्ञानविषैं आय झलके हैं ताको देखो। ऐसैं इस समतप्राभृतग्रथविषैं पहला जीवाजीवाधिकारविषैं टीकाकार पूर्वरंगस्थल कह्या।

जीवाजीव अधिकार

जीवाजीव विवेक पुष्कल दशा प्रत्याययत्पार्षदान् ।
आसंसार निवद्ध बंधन विधिध्वसां द्विशुद्धं स्फुटत्
आत्माराम मनन्तधाम सहसाध्यक्षेण नित्योदितं ।
धीरोदान्त मनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो
ह्लादयत् ॥१॥

ज्ञान है सो मनको आनन्दरूप करता संता प्रगट होय है । कैसा है ? पार्षद कहिये जीवाजीवके स्वाँग कू देखने वाले महंत पुरुषनिकूं जीव अजीव का भेद देखने वाली उज्ज्वल निर्दोष दृष्टि ताकरि भिन्न द्रव्य की प्रतीति उपजावना संता है । बहुरि अनादि संसार तें दृढ़ वंध्या जाका ऐसा जो ज्ञानावरणादि कर्म ताके नाश तें विशुद्ध भया-स्फुट भया है जैसे फूलकी कली फूले तैसे विकास रूप है । बहुरि कैसा है ? आत्मा ही है आराम कहिये रमने का क्रीड़ावन जाके । अनंत ज्ञेयनिके आकार आनि झलके हैं तौऊ आप अपने स्वरूप ही में रमे है । बहुरि अनंत

है धाम कहिये प्रकाश जाका । बहुरि प्रत्यक्ष तजेकरि नित्य उदय रूप है । बहुरि कैसा है ? धीर है, उदात्त कहिए उत्कट है याही तैं अनाकुल है सर्व वाँछा रहित निराकुल है ।

कर्तृकर्माधिकार

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी ।
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्म प्रवृत्तिं ॥
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्त धीरं ।
साक्षात्कुर्वन्निरुपधिप्रथग्द्रव्य निर्भासि द्रव्यं ॥२॥

ज्ञान ज्योति है सो प्रगट स्फुराय मान ही है । कहा करता संता ? अज्ञानी जीवनि के ऐसी कर्त्ता कर्म की प्रवृत्ति है जो इस लोक विषै मैं चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ सो तो एक कर्ता हूँ वहुरि ए क्रोधादिक भाव हैं ते मेरे कर्म सो ऐसा कर्त्ता कर्म की प्रवृत्तिकूँ साक्षात् यह ज्ञान शमन करता संता मेटता है । कैसा है ज्ञानज्योति ? उत्कृष्ट उदात्त है काहू के आधीन नहीं है । बहुरि कैसा है ? अत्यन्त धीर है काहू प्रकार करि आकुलता रूप नहीं है । बहुरि कैसा है ? बिना परके सहाय न्यारे-न्यारे द्रव्यकूँ प्रतिभासने का जाका स्वभाव है । याहीतें समस्त लोका लोककूँ साक्षात् प्रत्यक्ष करता है । जानता है ।

पुण्यपाप

तदथ कर्म शुभाशुभ भेदतो ।
द्वितयतां गत मैक्य मुपानयत् ।।
ग्लपित निर्भर मोह रजा ग्रयं ।
स्वय मुदेत्यवबोध सुधाप्लवः ।।३।।

ग्रथ यह ग्रनुभव गोचर ग्रवबोधरूप चन्द्रमा है सो स्वयँ ग्रापै ग्राप उदयकूं प्राप्त होय है । कैसा है ? तत् कहिये सो प्रसिद्ध कर्म एक ही प्रकार है, सो शुभ ग्रर ग्रशुभ के भेदतें दोय पणाकूँ प्राप्त भया है, ताकूं एक पणाकूँ करता संता उदय होय है ।

आश्रव

अथ महामदनिर्भर मन्थरं
समर रंग परागत माश्रवम्
अथमुदार गंभीर महोदयो
जयति दुर्जय बोध धर्नुधरः ॥४॥

अथ जो काहू करि जीत्या न जाय ऐसा यह अनुभव गोचर अववोधरूप सुभट धनुषधारी है, सो आश्रव को जीते है । कैसा है वोधरूप सुभट ? उदार कहिए अमर्याद रूप फैलता अर गंभीर कहिये जाका छद्मस्थ थाह न पावें ऐसा है महान् उदय जाका । वहुरि आश्रव कैसा है ? महान् जोमद ताकरि अति शयकरि भरा मंथर है उन्मत्त है । बहुरि कैसा है ? समर रंग कहिये समरभूमि ता विषैं आया है ।

संवर

**आसंसार विरोधि संवर जयैकान्तावलिप्ताश्रव
न्यक्कारात्प्रति लब्धनित्य विजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृतं पर रूपतो नियमितं सम्यक स्वरूपे स्फुरज्-
ज्योतिश्चिन्मय मुज्ज्वलं निज रसप्राग्भार
मुज्जृम्भते ।।५।।**

चैतन्यस्वरूप मय स्फुरायमान प्रकाश रूप ज्योति है सो उदयरूप होय फैले है। कैसा है? अनादि संसारतें लगाय अपना विरोधी जो संवर ताकी जीतकरि एकान्तपणे मदकूँ प्राप्त भया जो आश्रव ताका तिरस्कार तें पाया नित्य विजय जाने, ऐसे संवरकूँ निपजावता संता है। बहुरि परद्रव्य तथा परद्रव्य के निमित्ततें भये भाव तिनतें भिन्न है। बहुरि कैसा है? अपना सम्यक् कहिए यथार्थरूप ताविषैं निश्चित है बहुरि कैसा, है? उज्ज्वल है निराबाध निर्मल दैदीप्यमान प्रकाशरूप है। बहुरि कैसा है? अपना रस जो ज्ञानरूपप्रवाह ताका है प्राग्भार जाके अपना रसका बोझकूँ लिए है, अन्य बोझ उतारिधरया है।

निर्जरा

**रागाद्याश्रव रोधतो निजधुरान् धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः
प्राग्बद्धम् तु तदेव दग्धमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञान ज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्छति।६**

प्रथम तो उत्कृष्टसंवर है सो रागादिक जे आश्रव तिनके रोकनेतें अपनीधुरा जो सामर्थ्य की हद ताहि धारिकरि आगामी समस्त ही कर्म ताकूं मूलतें दूर ही रोकता संता तिष्ठ्या । अवै इस संवरभए पहिले बंधरूप भया था जो कर्म ताहिदग्ध करने कूं निर्जरा रूप अग्नि फैले है सो इस निर्जरा के प्रगट होनेतें ज्ञान ज्योति है सो आवरण रहित भया संता फेरि रागादि-भावनिकरि मूर्छित नाहीं होय है सदा निरावरण रहे है ।

बंध

रागोद्गार महारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीऽड़न्तं रसभार निर्भर महा नाट्येन वन्धं धुनत्
ग्रानन्दामृत नित्यभोज सहजावस्थांस्फुटन्नाटयत्
धीरोदात्त मनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति।७।

ज्ञान है सो उदय होय है। कहा करता संता उदय होय है ? बंध है ताहि उड़ावता संता उदय होय है। कैसा है बंध राग का उदगार जो उगलता—उदय होना सो ही भया महा-रस ताकरि समस्त जगतकूँ प्रमत्त प्रमादी मतवाला करिके ग्रर रसके भावकरिभर्‌या जो बड़ा नृत्य ताकरि नाचता है ऐसा बंधकू उड़ावता है। बहुरि ग्राप ज्ञान कैसा है ? ग्रानन्दरूप ग्रमृत का नित्य भोजन करने वाला है। बहुरि ग्रपनी जानन क्रियारूप सहज ग्रवस्था ताकूं प्रगट रूप नचावता संता उदय होय है। बहुरि धीर है, उदार है, निश्चल है, बड़ा जाका विस्तार है, बहुरि ग्रनाकुल है, जामें किछू ग्राकुलता का कारण नाहीं रहे। बहुरि निरुपाधि है, परिग्रह तें रहित है, किछू पर संबंधी ग्रहण त्याग नहीं है, ऐसा ज्ञान उदयकूँ प्राप्त होय है।

मोक्ष

द्विधा कृत्य प्रज्ञाककच दलनात् बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षंसाक्षात् पुरुषमुपलम्भैक नियतम्
इदानीमुन्मज्जन् सहजपरमानंद सरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृत सकल कृत्यं विजयते ॥८॥

पूर्ण ज्ञान हैं सो प्रज्ञारूप करोतंकरि दलन कहिये विदारणतें वंध अरु पुरूषकूँ द्विधा कहिये न्यारे न्यारे दोयकरि अर पुरूषकूं साक्षात् मोक्षकूं प्राप्त करना संता जयवंत प्रवर्ते है। कैसा है पुरूष ? उपलंभ कहिये उत्पन्न स्वरुप का साक्षात् ।अनुभवन ताहिकरि निश्चित है। वहुरिज्ञान कैसा है ? उदय हुवा जो अपना स्वभाविक परम आनन्द ताकरि सरस है रस भस्याहै। वहुरि पर कहिये उत्कृष्ट है। वहुरि कीये हैं समस्त करने योग्य कार्य जाने। अब कछू करना न रह्या है।

सर्व विशुद्धिद्वार

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरस विसरापूर्ण पुण्या चलार्चिः
टंकोत्कीर्ण प्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥१॥

ज्ञानका पुंज आत्मा है सो स्फुरायमान प्रगट होय है। कहाकरि प्रगट होय है ? समस्त ही कर्ता अरभोक्ता इत्यादिक भाव हैं तिनि सर्व ही कूं भलेप्रकार प्रलय कहिये नाशकूं प्राप्त-करि प्रगट होय है। बहुरि कैसा है ? प्रतिपद कहिये बारंबार नाशकूँ प्राप्तकरि प्रगट होय है बन्धमोक्षकी ज्यों कल्पनाप्रवृत्ति तातैं दूरीभूत है—दूरीवर्ती है बहुरि शुद्धहै, शुद्धहे। दोयवार कहनेतें रागादिकमल अर आवरण दोउते रहित है। बहुरि कैसा है ? अपना निजरस जो ज्ञानरस ताका विसर कहिये फैलना ताकरि अपूर्ण कहिये भरा ऐसा पवित्र अर अचल है अर्चि कहिये ज्वाला दीप्ति प्रकाश। बहुरि कैसा है ? टँकोत्वीर्ण है प्रगट महिमा जाकी

दर्शन ज्ञान चारित्र
 आत्मा तत्व मात्मनः
एक एव सदा सेव्यो
 मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥१०॥

जातें आत्मा का तत्व कहिये मोक्ष मार्ग दर्शन ज्ञान चारित्रमयी है, तातें मोक्ष के इच्छुक पुरुषनिकरि एक ही यह मोक्ष मार्ग सदा सेवने योग्य है।

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञपि वृत्यात्मकः
तत्रैवस्थिति मेति यस्तमनिशं ध्यायेच्चतंचेतसि
तस्मिन्नेय निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्यसारम चिरान्नित्योदयं
विन्दति ॥११॥

जो दर्शन ज्ञान चारित्रमयी यही एक मोक्ष का मार्ग है, सो जो पुरुष तिसही विषै स्थिति कूं प्राप्त होय है तिष्ठै है, बहुरि तिसहीकूं निरन्तर ध्यावे है : बहुरि जो तिसहीकूं चेते है, अनुभवे है, बहुरि जो तिसही विषै विहार करे है, प्रवर्त्ते है। कैसा भयासंता ? अन्यद्रव्यनिकूं नाहीं स्पर्शता संता, सो पुरुष थोरे ही कालमें अवश्य समयसार जो परमात्मा का रूप जाका नित्य उदय रहे, ऐसा अनुभवे है पावे है।

इदमेकं जगच्चक्षु
रक्षयं याति पूर्णताम्
विज्ञान घन मानन्द
मय मध्यक्षतां नयत् ॥१२॥

इदं कहिये यह समय प्राभृत है सो पूर्णताकूं प्राप्त होय है। कैसा है ? अक्षय कहिये जाका विनाश न होय ऐसा जगत के अद्वितीय नेत्र स्थान है। ऐसा विज्ञानघन समयसार आनंद मय प्रत्यक्षपने को प्राप्त हो।

अलमलमिति जल्पै दुर्विकल्पै रनल्पैः
अयमिह परमार्थ श्चिन्त्यताम् नित्यमेकः।
स्वरस विसरपूर्ण ज्ञान विस्फूर्तिमात्रात्
न खलु समय सारादुत्तरं किंचिदस्ति ॥१३॥

आचार्य कहे हैं जो अतिकहनेकरि अर बहुत विकल्पनि करि तो पूरिपड़ो। इस अध्यात्मग्रन्थ विषै यह परमार्थ है सो एक निरन्तर अनुभवन करना, जातें निश्चयकरि अपना रस का फैलावकरि पूर्ण जो ज्ञान ताकास्फुरायमान होने मात्र जो समयसार तिस सिवाय अन्य किछू भी सार नाहीं है।

कषाय कलिरेकतःस्खलति शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥१४

आत्माका स्वभावका महिमा है सो अद्भुत तैं अद्भुत विजयरूप प्रवर्ते है। काहूकरि बाध्या न जाय है। कैसा है? एकतरफदेखिये तो कषायनि का कलेश दीखै है। बहुरि एक तरफ़ देखिये तो कषायनि का उपशमरूपशांतभाव है। बहुरि एक तरफ देखिये तो संसार संबंधी पीड़ा दीखै है। बहुरि एक तरफ देखिये तो संसारका अभावरूप मुक्ति भी स्पर्शे है। एक तरफ देखिये तो समस्त ज्ञेयवस्तू की त्रिकाल गोचर पर्याय एक समयमात्र काल दिखै ज्ञानमोहि मुनित्रिम्वरूप है। बहुरि एक तरफ देखिये तो केवल एक चैतन्यमात्र ही शोभै है। ऐसें अद्भुततें अद्भुत महिमा है ॥१४॥

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्रिलोकी
स्खलदखिल विकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्वोपलंभः
प्रसभ नियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥१५॥

यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्य चमत्कार है सो जयवंत प्रवर्त्ते है। काहू करि वाध्या न जाय ऐसे सर्वोत्कृष्ट होय प्रवर्त्ते है। कैसा है ? अपना स्वभावरूप जो तेजः प्रकाश का पुंज ता विषै मग्न होते जे तीनलोक के पदार्थ तिनिकरि होते दीखते हैं अनेक विकल्प भेद जामें ऐसा है। तौउ एक स्वरूपही है। बहुरि कैसा है अपना निजरसकरिपूर्ण ऐसानांही छिद्या है तत्व स्वरूप का पावना जाके। बहुरि कैसा है ? प्रसम कहिये प्रगट बलात्कारै नियमरूप है दीप्ति जाकी ॥१५॥

अविचलित चिदात्मन्यात्मनात्मानमात्मनि
अनवरत निमग्नं धारयद् ध्वस्त मोहम्
उदित ममृत चन्द्र ज्योतिरेतत् समन्ताद्
ज्वलतु विमल पूर्णं निःसम्पन्न स्वभावम्।।१६।।

यह अमृतचन्द्र ज्योति कहिये जामें मरण नाहीं तथा जाकरि के अन्यके मरण नाहीं सो अमृत तथा अत्यन्त स्वादु-रूप मिष्टहोय ताको लोकरूढ़िकर अमृत कहे हैं, ऐसा अमृतमयी जो चन्द्रमा सारिखा ज्योति प्रकाश स्वरूप ज्ञान, प्रकाशरूप आत्मा सो उदयकूं प्राप्त भया। सो यह समंतात् कहिये सर्व तरफ सर्वक्षेत्रकालमें ज्वलतु कहिये देदीप्यमान प्रकाश रूप रहो। कैसा है? अविचलित कहिये निश्चल जो चित् कहिये चेतना सो है स्वरूप जाका ऐसा जो अपने आत्मा ताविषैं आपही करि अपने आत्माकूं निरंतर मग्न हुआ धारता संता है। पाया स्वभावकूँ कवहूँ नाहीं छोड़ता है। बहुरिकैसा है? ध्वस्त कहिये नाशकूं प्राप्त भया है मोह जाका अज्ञान अंधकारकूं दूर किया है। बहुरि निःसपत्न कहिये प्रतिपक्षी कर्मकरि रहित ऐसा है स्वभावजाका बहुरि कैसा है निर्मल है अरपूर्ण है।
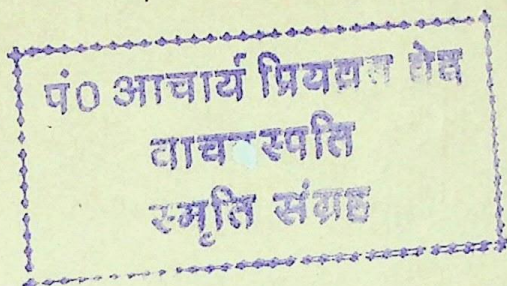
श्रीमती सौभाग्यवती चमेलीदेवी धर्मपत्नी ला० लालचन्द जैन एडवोकेट रोहतक ने मुक्तावली-व्रत के उद्यापन में २००) प्रदान किये थे तथा इस प्रकाशन का शेष व्यय भी अपनी उदारता से किया। हम इसके लिए आभारी हैं और उन्हें धन्यवाद भी देते हैं।

नानकचन्द जैन
एडवोकेट, रोहतक